* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

भगवान् भोलेनाथ

गीतोपदेश

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥
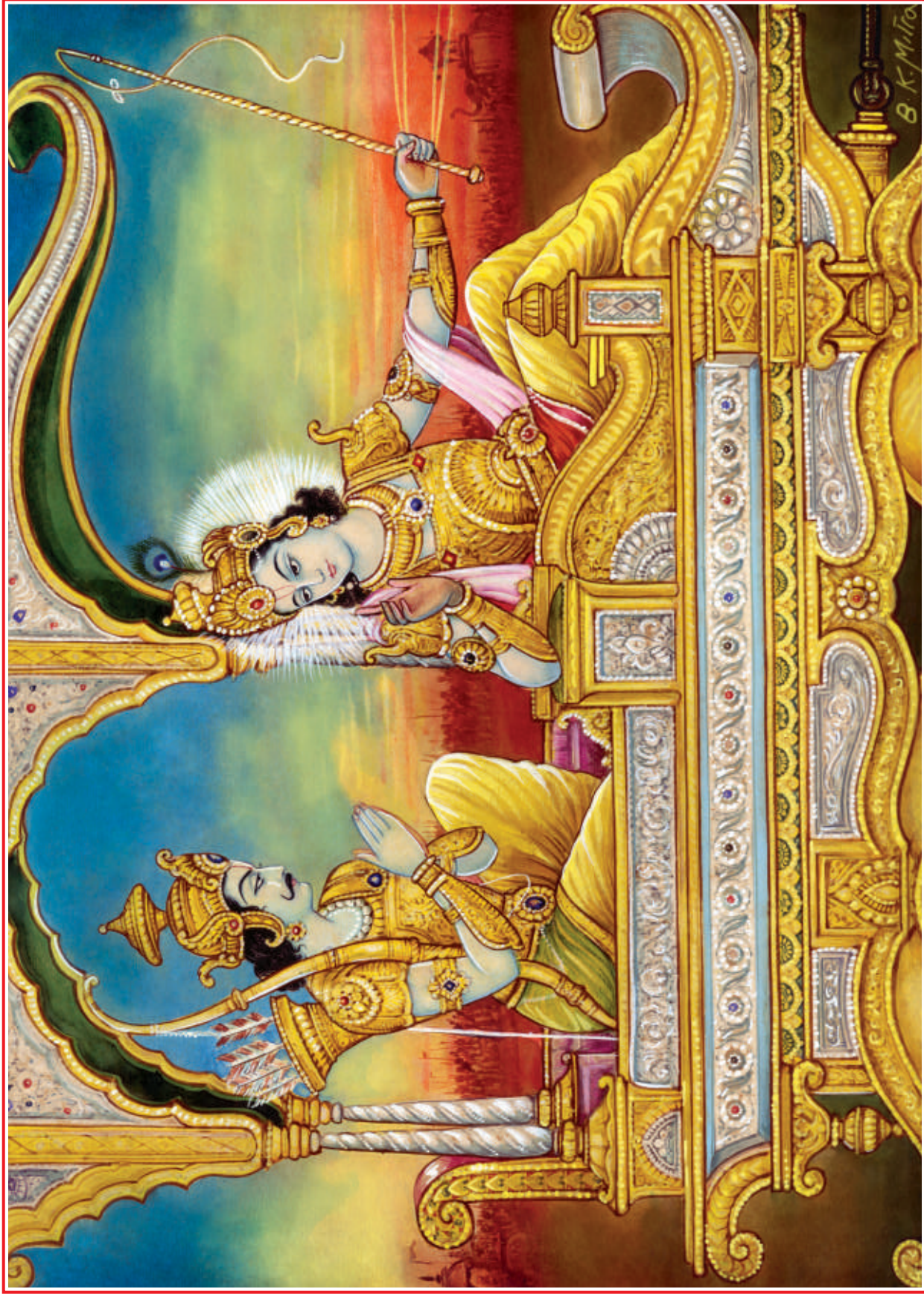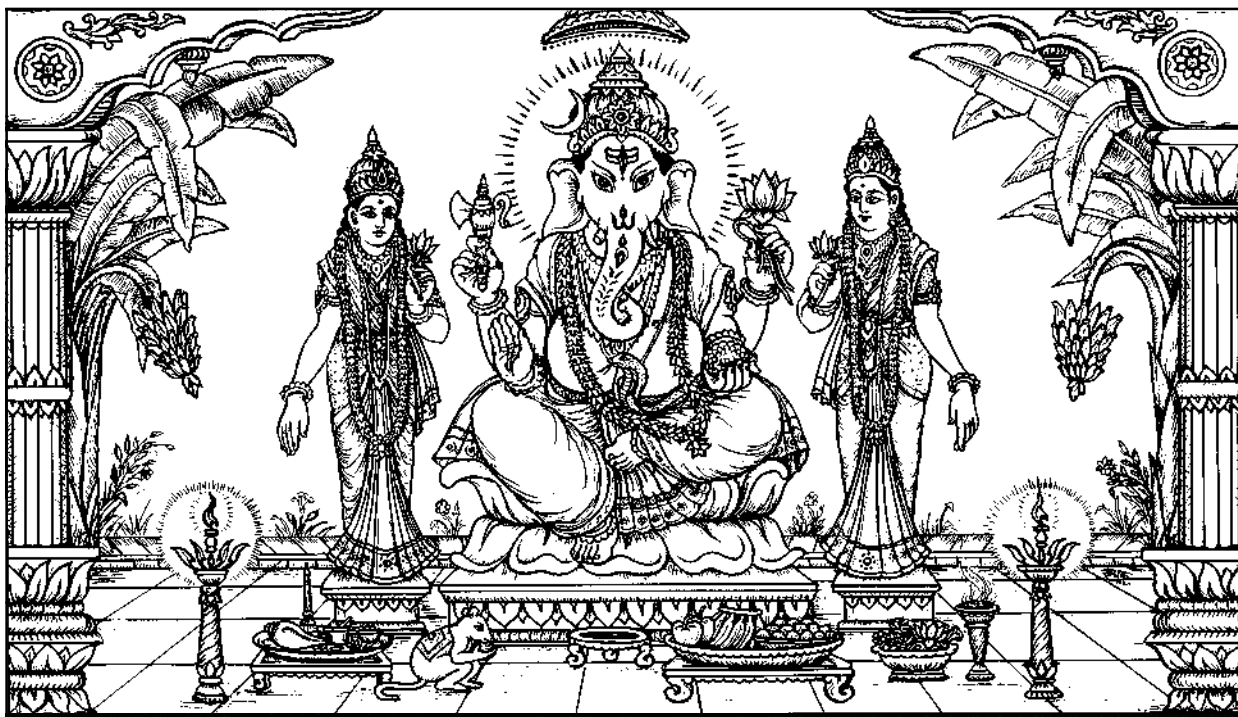
कल्याण

यतो वेदवाचो विकुण्ठा मनोभिः सदा नेति नेतीति यत्ता गृणन्ति।
परब्रह्मरूपं चिदानन्दभूतं सदा तं गणेशं नमामो भजामः॥

वर्ष ९५ | गोरखपुर, सौर पौष, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, दिसम्बर २०२१ ई० | संख्या १२

पूर्ण संख्या ११४१

गीता-माहात्म्य

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतमेको देवो देवकीपुत्र एव।
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा॥
सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्॥

देवकीपुत्र भगवान् श्रीकृष्णके द्वारा गाया हुआ भगवद्गीताशास्त्र ही एकमात्र शास्त्र है, देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण ही एकमात्र आराध्यदेव हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णका नाम ही एकमात्र मन्त्र है और उन भगवान्‌की सेवा ही एकमात्र कर्तव्य-कर्म है।

सम्पूर्ण उपनिषद् गौएँ हैं और गोपालनन्दन श्रीकृष्ण उन्हें दुहनेवाले (ग्वाले) हैं, अर्जुन उन गौओंके बछड़े हैं तथा यह महत्त्वपूर्ण गीतारूप अमृत ही उसका दूध है और सुन्दर बुद्धिवाले विचारवान् पुरुष ही उस दूधका पान करनेवाले हैं।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर पौष, वि० सं० २०७८, श्रीकृष्ण-सं० ५२४७, दिसम्बर २०२१ ई०, वर्ष ९५—अंक १२

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — **वार्षिक** US$ 50 (` 3,000) ; **पंचवर्षीय** US$ 250 (` 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर निःशुल्क पढ़ें।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे
हरे राम हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

॥ श्रीहरिः ॥

सर्वे भवन्तु सुखिनः
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत्॥
(महर्षि व्यास)

सभी प्राणी सुखपूर्वक रहें, सभी रोगमुक्त हों, सभीका कल्याण हो और किसीको दुःख न उठाना पड़े।

सर्वव्यापी परमात्मासे प्रार्थना सर्वदा सभीके हितमें करनी चाहिये। सबके हितमें अपना और अपनोंका हित भी सम्मिलित होता ही है।

—सम्पादक

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
कृष्ण हरे हरे॥
राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कल्याण

याद रखो—जो कार्य किसी आवेश या किसी आवेगके समय सहसा कर लिया जाता है, उससे बड़ी हानि होती है और आगे चलकर अत्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसलिये जब काम, क्रोध, लोभ, अभिमानका आवेश हो, या जब रोगके कारण चित्त स्थिर न हो, उस समय किसी कामके करनेका मन हो तो उसे उस समय न करके दूसरे समयके लिये टाल दो।

याद रखो—जब आवेश होता है, तब बुद्धि परिणामको भूल जाती है और अच्छे-बुरेका निर्णय करनेमें असमर्थ हो जाती है। जब-जब आवेश उतरता है, तब पता लगता है कि मैं उस समय जो कुछ करने जा रहा था, वह सर्वथा अनुचित और मेरे लिये बड़ा ही हानिकर था।

याद रखो—आवेश उतरनेपर—आवेशके समय किसी कामको न कर बैठनेवालेको बड़ी शान्ति मिलती है; क्योंकि वह अपने-आपको एक बड़े भारी हानिकर परिणामसे बचा हुआ पाता है। इसलिये यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि आवेशके समय मनमें आया हुआ कोई भी काम नहीं करूँगा। उस समय विवेक प्राय: नष्ट हो जाता है, परंतु प्रतिज्ञाका स्मरण रह सकता है और बार-बार इस प्रकार करनेपर वैसी ही आदत पड़ जाती है।

याद रखो—कभी किसीका बुरा करनेकी मनमें आये, कभी शास्त्रविरुद्ध पाप करनेकी इच्छा हो अथवा कभी दूसरेको दु:ख पहुँचानेका मन हो तो उस समय उस कामको न करे, उसे दूसरे समयके लिये टाल देना चाहिये। कुछ समय बाद जब विवेक जाग्रत् होगा, तो इन कामोंसे आप ही मन हट जायगा और तुम बहुत बड़ी बुराई तथा उसके भयानक परिणामसे बच जाओगे।

याद रखो—परिवारके किसी आदमी, मित्र, सुहृद्, सम्बन्धी, नौकर और स्त्री-जातिके व्यक्तिका कोई अपराध देख-सुन पड़े तो उसी क्षण उसे प्रकट मत करो; निष्पक्ष नेत्रोंसे और शुद्ध हृदयसे खूब जाँच करो और जबतक उनका अपराध स्पष्टरूपसे प्रमाणित न हो जाय, तबतक उसे अपने मनमें छिपाये रखो। अपराध प्रमाणित होनेके बाद भी यदि किसीका जीवन बिगड़ता हो तो उसके साथ सम्बन्ध तोड़ लो; पर उसके उस अपराधको प्रकाशित मत करो।

याद रखो—जो मनुष्य दूसरेको अपराधी सिद्ध करनेमें जितना अधिक सुख मानता और उतावला होता है, उतना ही उसे पीछे पछताना पड़ता है। कौन जानता है तुम जिसको अपराधी मान रहे हो, वह सर्वथा निरपराध हो और असली अपराधीका तुम्हें पता ही न हो। अतएव किसीके दोषको बिना जाँचे प्रकट करना, सिद्ध करना तो अपराध है ही—किसीपर सन्देह करना भी अपराध है।

याद रखो—तुम किसीको अपराधी मानकर उसका नाम प्रकट कर देते हो और वह वस्तुत: निरपराध है तो तुम्हारी इस क्रियासे उसका कितना बड़ा नुकसान होगा, उसकी इज्जतपर धक्का लगेगा, लोगोंमें उसके प्रति घृणा पैदा होगी, इससे उसकी हानि होगी और उसको महान् दु:ख होगा। सोचो, यदि इसी प्रकार तुमपर कभी झूठा दोष लगता है, तो तुम्हें कितना दु:ख होता और तुम किस प्रकार व्याकुल होकर अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेके लिये छटपटाते। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् भोलेनाथ
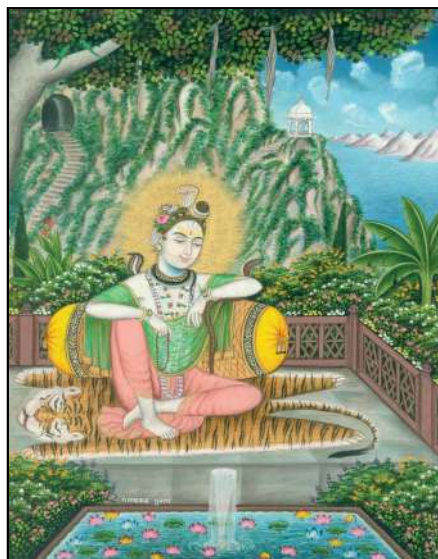
मूर्तिर्मृदा बिल्वदलेन पूजा
अयत्नसाध्यं वदनाब्जवाद्यम्।
फलं च यद्यन्मनसोऽभिलाषो
स्वरूपविश्वेश्वर एव देवः॥

अर्थात् मिट्टीसे ही मूर्ति बन जाती है, बेलके पत्तेसे ही पूजा हो जाती है तथा बिना मेहनतके ही मुँह बजा देनेसे बाजेका काम हो जाता है। फिर इस पूजासे जो-जो मनकी अभिलाषाएँ होती हैं, सब पूरी हो जाती हैं—ऐसे हैं भगवान् भोलेनाथ!

त्रिदेवोंमें देवाधिदेव भगवान् शिवका स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक ओर वे कल्याणके प्रदाता हैं, तो दूसरी ओर प्रलयंकर भी हैं। वे दिगम्बर होते हुए भी सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, त्रैलोक्याधिपति होकर भी श्मशानमें निवास करनेवाले, अनन्त विभूतियोंके स्वामी होनेपर भी भस्म रमानेवाले, योगिराजाधिराज होकर भी अर्धनारीश्वर तथा कान्तासेवित होते हुए भी कामजित् हैं। भगवान् शिव आशुतोष एवं अवढरदानी हैं। वे क्षमाशील तथा अशरणोंको शरण देनेवाले, सबके मूलकारण, पालक, रक्षक एवं नियन्ता हैं। अतः ईश्वरके ईश्वर महामहेश्वर कहे जाते हैं। क्रोधित होनेपर वे त्रिलोकीका संहार करनेवाले रुद्र और प्रसन्न होनेपर भोलेनाथ हैं।

भगवान् भोलेनाथ कल्पवृक्ष हैं। मुँहमाँगा वरदान देनेवाले हैं। यदि उपासकने उनसे विषय माँगा तो वे विषय दे देंगे, परंतु विषय उसके लिये विष होगा और अन्तमें दुःखदायी होगा। कामनासे घिरे हुए विषयपरायण मूढ़ पुरुष असुर हैं। ऐसे असुरोंके अनेक दृष्टान्त प्राप्त होते हैं, जिन्होंने भगवान् शिवजीकी उपासना करके उनसे विषय माँग लिये और यथार्थ लाभसे वंचित रह गये। अतएव भगवान् शिवके उपासकको जगत्के विषयोंकी आसक्ति छोड़कर यथार्थ वैराग्यसम्पन्न होकर परम वस्तुकी चाहना करनी चाहिये, जिससे यथार्थ कल्याण हो। याद रखना चाहिये कि शिव स्वयं कल्याणस्वरूप ही हैं, इससे उनकी उपासनासे उपासकका कल्याण बहुत ही शीघ्र हो जाता है। सिर्फ विश्वास करके लग जानेमात्रकी देर है। भगवान्के दूसरे स्वरूप बहुत छान-बीनके अनन्तर फल देते हैं, परंतु अवढरदानी भोलेनाथ शिव तत्काल फल दे देते हैं।

भगवान् शंकरके भोले स्वभावकी अनेक कथाएँ प्रसिद्ध हैं। एक बधिक था। एक दिन उसको खानेके लिये कुछ नहीं मिला। संयोगसे उस दिन शिवरात्रि थी। रात्रिके समय उसने वनमें एक शिवमन्दिर देखा। वह भीतर गया। उसने देखा कि शिवलिंगके ऊपर स्वर्णका छत्र टँगा हुआ है। अतः उस छत्रको उतारनेके लिये वह जूतीसहित शिवलिंगपर चढ़ गया। 'इसने अपने-आपको मेरे अर्पण कर दिया'—ऐसा मानकर वे उसके सामने प्रकट हो गये।

भस्मासुरने यह वरदान माँगा कि मैं जिसके सिरपर हाथ रखूँ, वह भस्म हो जाय, तो शंकरजीने उसको वरदान दे दिया। अब पार्वतीजीको पानेकी इच्छासे वह उलटे शंकरजीके ही सिरपर हाथ रखनेके लिये दौड़ पड़ा।

महेश्वरकी लीलाएँ अपरम्पार हैं। वे दया करके अपनी लीलाओंका रहस्य जिनको जनाते हैं, वे ही उसे जान पाते हैं। भोले भण्डारी मुँहमाँगा वरदान देनेमें कुछ भी आगा-पीछा नहीं सोचते, जरा-सी भक्ति करनेवालेपर भी आपके हृदयका दया-समुद्र उमड़ पड़ता है; ऐसे भोलेनाथ भगवान् शंकरको जो प्रेमसे नहीं भजते, उनका मनुष्यजन्म लेना ही व्यर्थ है। इससे अधिक उनके लिये और क्या कहा जाय!

अपने विवेकका आदर

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

सबसे कठिन बात यह है कि मनुष्य विवेक-विचारके द्वारा जिस बातको ठीक समझता है, उसके अनुसार चेष्टा नहीं करता। इसमें प्रधान कारण विश्वासकी कमी है। बात ठीक है, बुद्धि और युक्तियोंके द्वारा समझनेकी चीज है; वह समझ लेता है पर स्वीकार नहीं करता; क्योंकि विश्वास नहीं है। जैसे अनुभव हो वैसे आगे बढ़ता है और स्वीकार करता जाता है और ज्यों-ज्यों अनुभव हो त्यों-त्यों साधन बढ़ता जाता है। जिस विषयमें विश्वास हो जाता है, उसके करनेमें कमी नहीं लाता। लौकिक खतरेके बारेमें मालूम हो जानेपर तो बचनेके लिये प्रयत्न करता है, किंतु पारमार्थिक खतरेको जानते हुए भी तत्पर नहीं होता। इसका कारण विश्वासकी कमी है। सत्संगमें, शास्त्रोंमें जैसी बातें सुनी और भजन-ध्यानसे मालूम हुईं, पर मनमें जँची नहीं कि यह बात ठीक है। ध्रुवको भगवान् मिल गये, शास्त्रोंमें यह बात आती है; किंतु उसपर विश्वास नहीं होता तो यह विश्वासकी कमी है, जिससे तत्परतामें कमी मालूम पड़ती है। प्रथम तो भगवान् हैं, इसपर पूरा विश्वास नहीं। दूसरी बात है, वे मिलते हैं इस विश्वासमें कठिनता है। तीसरी बात है कि अपनेको मिलना कठिन समझते हैं। इससे साधनमें कमी आती है। साधन नहीं होता। शास्त्रोंमें जगह-जगह लिखा है, उनमें विश्वास नहीं है। इसलिये चेष्टामें कमी आती है। भगवान् मिलते हैं फिर उनसे अपने वंचित क्यों रहें ? सभी आदमी उनसे लाभ उठाते हैं फिर हम वंचित क्यों रहें? इस प्रकारके अविश्वासका कारण यह है कि संसारमें दम्भ अधिक है। जहाँ देखते हैं, वहाँ पोल-ही-पोल है। सच्चाई बहुत कम दीखती है। साधु १०० में ९० तो नापास ही हो जाते हैं और दसमें यह श्रद्धा होती है कि ये अच्छे हैं, जिज्ञासु हैं, उन दसोंमें भी प्राप्तिवाला शायद ही कोई निकले, ऐसी दशा है। हाथ कुछ नहीं लगता। गृहस्थोंमें तो और भी कठिनाई है। १०० में शायद १० ही अच्छे निकलेंगे।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

हजारों मनुष्योंमें कोई एक मेरी प्राप्तिके लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले योगियोंमें भी कोई एक मेरे परायण होकर मुझको तत्त्वसे अर्थात् यथार्थरूपसे जानता है।

यह प्रतीत होता है कि बहुत गृहस्थ तो यह जानते ही नहीं कि परमात्मा हैं और साधन करनेसे उनकी प्राप्ति हो सकती है। शहरोंके लोग चालाक होनेसे और देहातके लोग भोले होनेसे नहीं जानते। नास्तिकता ज्यादा चालाकोंमें फैलती है। विद्यासे नास्तिकता जाती है और आस्तिकता भी आती है। मनुष्य अपना ध्येय निर्णय करके विचार तथा बुद्धिके द्वारा साधन नहीं करता। इसका कारण श्रद्धाकी कमी है। हमलोग मानते हैं कि सत्य बोलना ठीक है। विवेकसे माना, पर जबतक क्रियारूपमें नहीं आता तो समझना चाहिये कि अभी श्रद्धा नहीं है। आलस्य, विषयासक्ति और अश्रद्धा बाधक है। प्रधान तो अश्रद्धा है। श्रद्धा हो तो सब दोष भाग जायँ। लोगोंमें आत्मबल नहीं है। आत्माकी कमजोरी है। आप एक सिद्धान्त मानते हैं, उसे भय, लोभ, काम, क्रोध किसी कारणसे त्याग दिया तो आत्मबलकी कमी है।

हरिश्चन्द्रपर कितनी विपत्तियाँ पड़ीं, वह सत्यसे डिगे नहीं। शापके भयसे धर्मका त्याग नहीं किया। अपने आरामका, स्त्री-पुत्रका त्याग कर दिया, अपने-आपको बेच दिया। भीतरमें आत्मबल हो तो जिस सिद्धान्तको मानता है, उसे छोड़ता नहीं। अज्ञता बेसमझी है, जिससे परमात्मा, स्वयं और संसार क्या है—यह नहीं जानता। बुद्धि तीक्ष्ण नहीं होनेके कारण अध्यात्मविषयको समझनेमें बुद्धिकी कमी है। यदि समझकी कमी नहीं है किंतु धारण नहीं हो रही है तो श्रद्धाकी कमी है। समझकर मान लिया, किंतु लोभ, भय तथा कामसे दब गया तो आत्मामें कमजोरी है और माननेमें कमी है।

एक आदमीका दूसरेपर असर पड़ता है। अपने प्रभावके कारण, दयाके कारण या नरमाईके कारण असर पड़े तो यह अच्छा है, किंतु लाठीके प्रभावसे दूसरेपर असर पड़े—यह गुण नहीं दबावसे है, कायरता है। शिशुपालने भीष्म तथा भगवान् कृष्णपर बहुत आक्षेप किया। भीमसेनमें विवेक या विनय नहीं था, क्रोध था। वह बर्दाश्त नहीं कर सके। युधिष्ठिर क्षमाके स्वरूप थे। द्रौपदी-चीरहरणके समय भीमके रोमकूपोंसे आगकी चिनगारियाँ उठने लगीं। युधिष्ठिर चुप रहे। युधिष्ठिरमें कायरता नहीं, वीरता, धीरता, गंभीरता और धार्मिकता थी।

किसी भी उद्देश्यसे भजन कल्याणकर

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

प्राणिमात्रकी प्रवृत्ति सुखकी ओर होती है और येन-केन-प्रकारेण वह सर्वदा उसीके लिये प्रयत्नशील रहता है, किंतु हिरण्यगर्भ-लोकपर्यन्त होनेवाले सभी सुख क्षयी तथा दुःखसंपृक्त हैं। निरतिशय सुखस्वरूप केवल परब्रह्म परमात्मा है। उससे अतिरिक्त जितनी वस्तुएँ हैं, सभी मायिक और दुःखरूप हैं। इसलिये शास्त्रोंने आनन्दस्वरूप परब्रह्मको ही कहा है—**'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।'** अर्थात् ब्रह्म सत्यस्वरूप, ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप है। इसलिये सुख चाहनेवालेको, चाहे वे इहलौकिक सुख चाहें या पारलौकिक, भगवान्का भजन अवश्य करना चाहिये। जो लोग किसी भी कामनासे भगवान्का भजन करते हैं, वे सब पुण्यात्मा हैं।

भगवान्ने स्वयं गीतामें कहा है—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

हे अर्जुन, जो सुकृति अर्थात् जन्म-जन्मान्तरसे पुण्यसंचय करनेवाले, अतएव सफल है जन्म जिनका, वे ही मेरा भजन करते हैं। वे चार हैं, उनमें तीन तो सकाम हैं तथा चौथा निष्काम। 'आर्त' वे हैं, जो शत्रु एवं व्याधि आदिद्वारा आपद्ग्रस्त होकर उसकी निवृत्तिकी इच्छासे हमारा भजन करते हैं। जैसे अपनी पूजाके लिये होनेवाले यज्ञका भंग होनेके कारण कुपित होकर इन्द्रके प्रलयंकारी वर्षा करते समय व्रजवासी लोग, जरासन्धके कारागारमें बन्द होकर नानाविध यातना भोगते राजा लोग, द्यूतसभामें वस्त्रापकर्षणसे बेइज्जत हो रही द्रौपदी तथा ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्र—इन लोगोंने आर्त होकर हमारा भजन किया। 'जिज्ञासु' कहते हैं आत्मज्ञानार्थी अर्थात् मुमुक्षुको। जैसे मुचुकुन्द, मिथिलानरेश जनक, श्रुतदेव तथा उद्धव। इन लोगोंने जिज्ञासुभावसे भगवान्का समाश्रयण किया। अर्थार्थी उसे कहते हैं, जो इहलोक या परलोकमें भोग-सामग्रीकी अपेक्षा करता है। जैसे इहलोकमें भोगकी सामग्री राज्य आदि चाहनेवाले सुग्रीव, विभीषण और परलोकमें राज्यादि चाहनेवाले ध्रुव। इन लोगोंने अर्थार्थी होकर भगवान्को अपनाया। ये तीनों ही सुकृति हैं, जिन्होंने भगवद्भजनसे अपनी अभीष्ट वस्तुको प्राप्त किया और अन्तमें भगवान्की मायाका ज्ञान पाकर भगवत्-स्वरूप हो गये।

ये तीनों सकाम भक्त हैं। इनमें भेद यह है कि जिज्ञासु ज्ञानोत्पत्तिके द्वारा साक्षात् मायाको पार करता है और आर्त तथा अर्थार्थी पहले जिज्ञासुत्व प्राप्त करते हैं, फिर मायाको तरते हैं। इसी बातको सूचित करनेके लिये भगवान्ने 'जिज्ञासु' पदको आर्त और अर्थार्थीके बीच रखा है। चौथा ज्ञानी है। ज्ञानी कहते हैं, जो भगवत्साक्षात्कार हो जानेके कारण भगवान्से नित्य युक्त रहता है। यह निष्काम भक्त है। इस प्रकार किसी भी उद्देश्यसे जो भगवान्का भजन करता है, वह सुकृति है तथा अन्तमें भगवान्का कृपापात्र अवश्य होता है। हमलोग वृन्दावनधाममें बैठे हैं। कम-से-कम यहाँ रहते हुए खूब भजन करना चाहिये। यों तो सारा संसार ही धर्मशालाके रूपमें अथवा एक चौराहेपर स्थित वृक्षकी छायाके रूपमें है, जहाँ अपने-अपने उद्देश्यसे गमन करनेवाले लोग कुछ समयके लिये इकट्ठे हो गये हैं। समय आनेपर सब जहाँके तहाँ चले जायँगे, साथ रहनेवाले कोई नहीं हैं। यदि कोई साथवाले हैं तो वह केवल धर्म है। उसमें भगवद्भजनरूप धर्म सर्वोत्कृष्ट है। इसलिये भगवान्ने कहा है कि कोई भी सांसारिक कार्य करो, किंतु साथमें मेरा स्मरण अवश्य करो। गीतामें भगवान्ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

अर्जुन, यतः अन्तकालमें मानव जिस वस्तुका स्मरण करता है, वही हो जाता है, अतः तुम सभी समय मेरा स्मरण करो। यदि कहो कि अभी मेरा अन्तःकरण शुद्ध नहीं, इसलिये मेरा मन बार-बार विषयोंमें चला जाता है, जिससे मैं सतत आपका स्मरण नहीं कर पाता,

तो अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये स्वधर्मरूप युद्ध भी करो। यहाँ क्षत्रिय अर्जुनका स्वधर्म युद्ध ही है, इसीसे भगवान्‌ने 'युद्ध करो' कहा। तात्पर्य यह है कि जिस किसीका भी अन्तःकरण शुद्ध न हो, वह अपने-अपने वर्ण एवं आश्रमधर्मोंका पूर्णरूपसे पालन करे, तभी उसका अन्तःकरण शुद्ध होगा और अन्तःकरणमें भगवान्‌का स्मरण होनेसे वह भगवत्स्वरूप हो जायगा। अन्तःकरणकी शुद्धिके पहले स्वधर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये।

पद्मपुराणमें एक कथा आयी है। नरोत्तम नामक एक ब्राह्मण बालक था। वह अपने वृद्ध माता-पिताको, जिनकी सेवा उसका उस समय स्वधर्म था, छोड़कर तप करने चला गया। वह नियमपूर्वक एक वृक्षके नीचे बैठकर तप करने लगा। कुछ दिनों बाद वृक्षपरसे विष्ठा करनेवाले एक पक्षीको उसने क्रोधभरी दृष्टिसे देखा, जिससे वह मरकर गिर पड़ा। उसे अभिमान हुआ। कभी वह भिक्षा लेने किसी गृहस्थके घर गया। वहाँ गृहस्वामिनी अपने पतिदेवकी सेवामें लगी थी। सेवासे निवृत्त होकर थोड़ी देरमें आयी तो इन्होंने उसे भी पक्षीवाली दृष्टिसे देखकर भस्म करना चाहा, तो उसने कहा—'महाराज! मैं पक्षी नहीं हूँ।' यह सुन तपस्वी घबड़ाया और पूछा—'देवि! पक्षीकी बात आपको कैसे विदित हुई?' पतिव्रताने कहा—'पतिसेवासे स्त्रीको सभी शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। यह भिक्षा लीजिये, मुझे इतना अवकाश नहीं है कि मैं आपसे अधिक बातें करूँ। यदि आपको अधिक जानना है तो एक चाण्डाल है, आप उसके पास जायँ।' तपस्वी चाण्डालके पास गये। उसने बिना कुछ कहे कह दिया कि 'आपको पतिव्रताने भेजा है, किंतु मुझे बिलकुल समय नहीं, आप तुलाधार वैश्यके पास चले जायँ, वहाँ सब आपको ज्ञात हो जायगा।' तपस्वीने वहाँ जाकर देखा कि तुलाधार अपनी दूकानदारीमें लगे हैं। उन्होंने भी बिना कहे बताते हुए कहा कि 'आप अद्रोहकके पास चले जायँ।' ब्राह्मणदेवता नरोत्तमने सभी जगह भगवान्‌को विराजते देखा। अद्रोहकने उनसे कहा कि 'ब्रह्मदेव! वृद्ध माता-पिताको छोड़कर तप करना आपका धर्म नहीं था, आपके लिये माता-पिताकी सेवा करना ही धर्म था। सो आपने उसे छोड़ तप प्रारम्भ किया तो आपको सिद्धि कैसे मिलेगी? अब आप जाइये और मनसा, वाचा, कर्मणा उनकी सेवा कीजिये, फिर आपको बिना तप ही सर्वसिद्धि प्राप्त हो जायगी।'

निष्कर्ष यह है कि स्वधर्मपालन करते हुए इहलौकिक उन्नतिके लिये भी भगवान्‌का भजन किया तो भी मानवका कल्याण हो जाता है। अतः आपलोग बड़े जोरसे भगवान्‌का भजन करें, कल्याण होगा।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

चाहे नीतिमें पारंगत विद्वान् लोग उनकी प्रशंसा करें या निन्दा, इच्छानुसार सम्पत्ति उनके पास आये अथवा चली जाय, मृत्यु आज ही हो अथवा युगों बाद; धीर एवं वीर पुरुष न्याय्य पथसे एक कदम भी पीछे नहीं हटते।

मन्त्र-सिद्धि

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

[कल्याणके आदिसम्पादक परमपूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके इस संस्मरणात्मक लेखको इस दृष्टिसे पुनः प्रकाशित किया गया है कि नवोन्मेषित भारतवर्षमें मन्त्रशक्तिकी आर्ष-सम्पदाको पुनः प्रस्थापित करनेकी ओर विद्वज्जनों और शोधपरक साधकोंका ध्यान आकृष्ट हो—सम्पादक]

कुछ दिनों पहले 'कल्याण' के एक पाठक महोदयने यह शंका की थी कि 'श्रीरामायणमें भरद्वाजमुनिके द्वारा सदलबल भरतजीके आतिथ्यमें जो विशाल सामग्रियोंकी व्यवस्थाका वर्णन है, वह कवि-कल्पना है, या वास्तवमें उसमें कोई तथ्य है।' उन्हें उस समय शास्त्रोंमें विश्वास करनेकी तथा मन्त्र एवं तपसे उत्पन्न सिद्धियोंकी बात लिख दी गयी थी। अब मुझे श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके द्वारा मास्टर श्रीश्रीरामजीका लिखा निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशनार्थ मिला है। इस वक्तव्यको लिखनेवाले सज्जन इन सब बातोंमें विश्वास करनेवाले नहीं थे, पर अब उनका मत बदला मालूम होता है। मैं स्वयं कुछ दिनों पहले दिल्ली गया था, तब श्रीजुगलकिशोरजीने मुझे वह मिस्रीकी ईंट दिखलायी थी और सारा हाल सुनाया था। जिन विशिष्ट सज्जनोंके सामने यह घटना हुई, उनके लिखित प्रमाणपत्र भी उन्होंने मुझे पढ़ाये थे। कुछ समय पहले काशीके स्वामीजी श्रीविशुद्धानन्दजीके भी ऐसे ही कुछ प्रयोग मैंने देखे थे, जिनको वे 'सूर्यविज्ञान' के द्वारा सम्पन्न बतलाते थे। इन सब चीजोंको प्रत्यक्ष देखकर मन्त्र-जप और तप:सिद्धिपर विश्वास करना ही पड़ता है। आधुनिक विज्ञान हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियोंकी मन्त्र-शक्तिके सामने अभी सर्वथा नगण्य है—यह प्राचीन विमान-निर्माण, अस्त्र-शक्ति, मन्त्रशक्ति आदिके वर्णनसे सिद्ध है।

यह सत्य है कि आजकल धूर्तता बढ़ गयी है और अधिकांश लोग चमत्कार दिखाकर, सोना आदि बना देनेका विश्वास दिलाकर लोगोंको ठगते एवं धोखा देते हैं, उनसे अवश्य सावधान रहना चाहिये। धोखेबाजोंकी नीच करतूतें लोगोंमें अवश्य अविश्वास पैदा करती हैं; परंतु उससे 'सत्य' का नाश नहीं होता। वस्तुतः उनका वह धोखा भी—सिद्धियोंकी सत्यताके आधारपर ही चलता है। मन्त्रसिद्धिसे देवता प्रत्यक्ष आज भी हो सकता है और सिद्धियाँ भी प्राप्त हो सकती हैं। यदि निम्नलिखित घटनाओंमें कोई धोखा नहीं साबित होता; तो मन्त्रसिद्धिके ये प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

मन्त्र-सिद्धिका अद्भुत चमत्कार

बिरला हाउस, नयी दिल्लीसे मास्टर श्रीरामजी लिखते हैं—दिल्लीमें अनुमानतः दो-ढाई माससे एक वैष्णव साधु आये हुए थे, जिनका नाम बाबा गोपालदास है। वे यहाँपर आर्यनिवास नं० १, डाक्टर लेनपर ठहरे थे। छतके ऊपर एक गोल-सा छोटा कमरा है, उसीमें वे रहते थे। उन्होंने गोपालका एक चित्र काष्ठकी चौकीपर रख छोड़ा था। उस चित्रके चारों तरफ कनेरके पुष्प चढ़ाये हुए रखे रहते थे। गोपालदास बाबा उस चौकीके पास ही एक दरीपर बैठे तुलसीकी माला फेरते थे। जो लोग उनके पास जाते, वे भी उसी दरीपर बैठ जाते थे। उनके पास जानेवालोंको प्रसाद देनेके लिये बाबाजी ईंटके छोटे-छोटे टुकड़े अनुमानतः ४-५ तोले वजनके एक हरे केलेके टुकड़ेमें गोपालकी मूर्तिके सामने आधा मिनट रखकर उठा लेते थे, तो ईंटके टुकड़े सफेद मिस्रीके टुकड़ोंमें बदल जाते थे और वे इन मिस्रीके टुकड़ोंको उन लोगोंको दे देते थे, जो उनके दर्शनके लिये जाते। कभी-कभी ईंटका टुकड़ा कलाकंदमें बदल जाता था। यह अद्भुत परिवर्तन कैसे हो जाता है? सो तो वह बाबाजी ही जानते हैं, और किसीको पता चला नहीं है, विज्ञानवेत्ता इस कारणको ढूँढ़ निकालें तो दूसरी बात है।

उक्त बाबाजीके पास जर्मन-राजदूत, जापानी-राजदूत, लोकसभाके अध्यक्ष श्रीमावलंकर, श्रीसत्यनारायण सिंह, रायबहादुर लक्ष्मीकान्त मिश्र आदि गये थे। इनको भी इसी प्रकारका प्रसाद दिया गया था। जर्मन राजदूतके साथ एक जर्मन महाशय भी थे। उन्होंने तो यह चमत्कार देखकर बाबाजीसे अपना शिष्य बना लेनेकी प्रार्थना भी की।

इन दो प्रकारके चमत्कारोंके अतिरिक्त तीन चमत्कार विशेष उल्लेखनीय हैं। पहला चमत्कार तो यह है कि श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाने एक ताँबेकी चमचीको एक केलेके हरे पत्तेमें लपेटकर अपने हाथमें लिया और

बाबाजीके कहनेके अनुसार श्रीबिरलाजी सूर्यके सामने खड़े हो गये। बाबाजी भी पासमें खड़े कुछ मन्त्र जपते रहे। दो-तीन मिनट बाद ही चमची निकाली गयी तो सोनेकी बन गयी थी। अभीतक वह चमची श्रीबिरलाजीके मुनीम डालूरामजीके पास उसी आर्यभवनमें रखी हुई है।

दूसरा चमत्कार यह हुआ कि इस मिस्रीके प्रसादका वृत्तान्त सुनकर एक महाशयने बाबाजीके पास जानेवालोंमेंसे किसीको यह बात कह दी कि हम तो बाबाजीकी मन्त्रसिद्धि तब मानें जब कि वे पूरी-की-पूरी एक नम्बरी ईंटको मिस्रीकी ईंट बना दें। ऐसी बात बाबाजीको सुनायी गयी तो बाबाजीने झट कह दिया कि गोपालजीकी कृपासे मिट्टीकी ईंटके टुकड़े मिस्रीके टुकड़े बन जाते हैं तो पूरी मिट्टीकी ईंटका मिस्रीकी ईंट बन जाना कौन बड़ी बात है। अतएव १८ सितम्बर बृहस्पतिवारको रात्रिके ८ बजे श्रीबिरलाजीके तथा कई सज्जनोंके सामने एक नम्बरी ईंट मँगायी गयी और उसको धो-पोंछकर एक सज्जनके हाथसे काष्ठकी एक चौकीपर वह ईंट रखवा दी गयी तथा एक केलेके पत्तेसे उस ईंटको ढक दिया गया। तीन-चार मिनटतक बाबाजी कुछ मन्त्र जपते रहे। फिर उस ईंटको उठाया गया तो केलेके पत्तेमेंसे एकदम श्वेत मिस्रीकी ईंट निकली। वह ईंट (बिरला-हाउस, दिल्लीमें) श्रीजुगलकिशोरजी बिरलाके पास रखी हुई है, सो ये दोनों चीजें तो मौजूद हैं, कोई भी देख सकता है।

तीसरी अद्भुत घटना तो मैंने स्वयं अपनी आँखोंसे देखी है। उस समय बाबू जुगलकिशोरजी बिड़ला, गायनाचार्य पं० रमेशजी ठाकुर तथा 'नवनीत'के संचालक श्रीश्रीगोपालजी नेवटिया उपस्थित थे। अनुमान दिनके दस बजे होंगे। उस समय किसीने बाबाजीसे कहा कि 'एक दिन आपने पानीसे दूध बनाया था, परंतु उस दिन प्रभुदयालजी हिम्मतसिंहका, माधवप्रसादजी बिरला आदि जो सज्जन देखते थे, उनको सन्तोष नहीं हुआ था। सो बाबाजी, इस प्रकारसे दूध बनायें कि किसीको भी सन्देह न रहे। इसपर बाबाजी बहुत हँसे और बोले, उन लोगोंकी श्रद्धाकी स्यात् परीक्षा की गयी होगी। इसके बाद बाबाजीने कहा, 'अच्छा, एक काठका पट्टा बाहर रखो और उसपर यह पानीकी बाल्टी रख दो।' बाबाजीने जैसा कहा वैसा ही किया गया। बाबाजीने अपनी चद्दर, जो ओढ़ रखी थी, वह भी उतार दी और एक कौपीन तथा उसपर एक तौलिया ही रखा और स्वयं दूर खड़े हो गये तथा सबको कह दिया कि उस बाल्टीको एक दफे फिर अपनी आँखोंसे देख लो। सबने वैसा ही किया। बाबाजीने एक आदमीसे कहा कि 'तुम इस पट्टेपर बाल्टीके पास बैठकर ओम्‌का जप करते रहो। फिर बाबाजी उस बाल्टीके पास गये और उसमेंसे कटोरी पानीकी भरी और सबको वह पानी दिया गया। सबने कहा, यह तो पानी ही है। फिर बाबाजी श्रीगोपालजीकी मूर्तिके पास जा बैठे और वह बाल्टी अपने पास मँगा ली। बाल्टी गमछेसे ढक दी गयी और एक लाल फूल, जो गोपालजीकी मूर्तिपर चढ़ा हुआ था, अपने हाथसे बाल्टीमें डाल दिया। उसके पश्चात् जब गमछा हटाया गया, तब एकदम सफेद दूध देखनेमें आया। सबको एक-एक कटोरी दूध दिया गया। शेष दूध बिरला-हाउस पहुँचाया गया, जो अनुमानतः ढाई सेर था। वह दूध गरम करके जमाया गया और दूसरे दिन उसमेंसे मक्खन निकाला गया।

बाबाजीकी ऐसी ही अनेक सिद्धियोंका हाल गोस्वामी गणेशदत्तजी सुनाया करते हैं; परंतु यहाँपर तो संक्षेपमें इतना ही उल्लेख किया गया है। इन कुछ आश्चर्यजनक बातोंको देखकर मनमें आया कि विज्ञानवेत्ताओंसे विनयपूर्वक निवेदन करूँ कि आर्य-ऋषियों और मुनियोंद्वारा सम्मानित पातंजल-योगदर्शनके सूत्र '**जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः**' में एक मन्त्रसिद्धि भी मानी गयी है। मन्त्रसिद्धिका चमत्कार देखनेका अबतक मुझे कोई अवसर नहीं मिला था, परंतु ये कुछ चमत्कार अपनी आँखोंसे देखकर मुझे मन्त्रसिद्धिमें पूर्णतया विश्वास हो गया है। साथ ही एक प्रकारका विस्मय भी उत्पन्न हो गया है। उसी विस्मयके कारण आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंसे यह निवेदन करनेकी प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई है कि आप पातंजल-योगदर्शनके उपर्युक्त मन्त्रमें वर्णित मन्त्रसिद्धिको मानते हैं या नहीं ? और यदि नहीं मानते हैं, तो आप भी ऐसे ही चमत्कार अपने विज्ञानद्वारा करके दिखायें और यदि आप दिखानेमें समर्थ नहीं हैं तो आप अपने अभिमानको त्यागकर भारतीय आर्यशास्त्रोंमें बतायी हुई

मन्त्रसिद्धिको सहर्ष स्वीकार कर लें; क्योंकि आप तो अपनेको बराबर ही सत्यका पुजारी घोषित करते रहते हैं।

आशा है, बुद्धिमान् विज्ञानवेत्ता इन रहस्योंकी जाँच-पड़ताल करके एक निर्णयपर पहुँचेंगे। केवल यह कह देनेसे कि 'यह सब निराधार है' काम नहीं चलेगा। किसी वस्तुको उसकी पूरी जाँच-पड़ताल किये बिना ही निराधार कह देना तो बहुत आसान बात है। जो अपनेको सत्यका पुजारी कहता हो, उसका कर्तव्य है कि या तो इन घटनाओंकी जड़में कोई धूर्तता या वंचना हो तो उसको साबित कर दे, या यह स्वीकार कर ले कि हमको विज्ञानके द्वारा तो इनका कोई रहस्य मालूम नहीं हो सकता, इसलिये योगदर्शनके उस सूत्रमें वर्णित मन्त्रसिद्धिको ही मानना न्यायसंगत होगा।

धैर्य

(गोलोकवासी सन्त पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

अस्तं गतोऽयमरविन्ददिनैकबन्धुः
भास्वान् लंघयति कोऽपि विधिप्रणीतम्।
रे चक्र! धैर्यमवलम्ब्य विमुञ्च शोकं
धीराः तरन्ति विपदं न तु दीनचित्ताः॥*

जिस बातको हम नहीं चाहते हैं और दैवगतिसे वह हो जाती है, उसके होनेपर भी जो दुखित नहीं होते, किंतु उसे दैवेच्छा समझकर सह लेते हैं, वे ही धैर्यवान् पुरुष कहलाते हैं। दु:ख और सुखमें चित्तकी वृत्तिको समान रखना धैर्य कहलाता है। जिसने शरीर धारण किया है, उसे सुख-दु:ख दोनोंका ही अनुभव करना होगा। शरीरधारियोंको केवल सुख-ही-सुख या केवल दु:ख-ही-दु:ख कभी भी प्राप्त नहीं हो सकता। जब यही बात है, शरीर धारण करनेपर दु:ख-सुख दोनोंहीका भोग करना है, तो फिर दु:खमें अधिक उद्विग्न क्यों हों और सुखमें फूलकर कुप्पा क्यों हो जायँ? दु:ख-सुख तो शरीरके साथ लगे ही रहते हैं। हम धैर्य धारण करके उनकी प्रगतिको ही क्यों न देखते रहें। जिन्होंने इस रहस्यको समझकर धैर्यका आश्रय ग्रहण किया है, संसारमें वे ही सुखी समझे जाते हैं। ऐसे ही पुरुषोंके गलेमें कीर्तिदेवी जयमाला डालती हैं, ऐसे ही पुरुषोंकी संसार पूजा करता है और ऐसे ही महापुरुष प्रात:स्मरणीय समझे जाते हैं।

धैर्यकी परीक्षा सुखकी अपेक्षा दु:खमें ही अधिक होती है। दु:खोंकी भयंकरताको देखकर विचलित होना यह प्राणियोंका स्वाभाविक धर्म है, किंतु जो ऐसे समयमें भी विचलित नहीं होता, वही पुरुषसिंह धैर्यशाली कहलाता है। हम आखिर अधीर होते क्यों हैं? इसका कारण हमारे दिलकी कमजोरीके सिवा और कुछ भी नहीं है। इस बातको सब कोई जानते हैं कि आजतक संसारमें ब्रह्मासे लेकर कृमि-कीट-पर्यन्त सम्पूर्णरूपसे सुखी कोई भी नहीं हुआ। सभीको कुछ-न-कुछ दु:ख अवश्य हुए हैं, फिर भी मनुष्य दु:खोंके आगमनसे व्याकुल होता है तो यह उसकी कमजोरी ही कही जा सकती है। महापुरुषोंके सिरपर सींग नहीं होते, वे भी हमारी ही तरह दो हाथ और दो पैरवाले साढ़े तीन हाथके मनुष्यके आकारके जीव होते हैं। किंतु उनमें यही विशेषता होती है कि दु:खोंके आनेपर वे हमारी तरह अधीर नहीं हो जाते, उन्हें प्रारब्ध कर्मोंका भोग समझकर वे प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं। बस, इसी एक गुणसे वे जगद्वन्द्य और सबके आदरणीय समझे जाते हैं। पाण्डव दु:खोंसे कातर होकर अपने भाइयोंके दास बन गये होते, मोरध्वज पुत्र-शोकसे दुखी होकर मर गये होते, हरिश्चन्द्र राज्यलोभसे अपने वचनोंसे फिर गये होते, श्रीरामचन्द्र वनके दु:खोंकी भयंकरतासे घबड़ाकर अयोध्यापुरीमें रह गये होते, राजा शिविने यदि शरीरके कटनेके दु:खसे कातर होकर कबूतरको बाजके लिये दे दिया होता तो उनका नाम आज कौन जानता? ये भी अन्य असंख्य नरपतियोंकी भाँति कालके गालमें चले गये, किंतु इनका नाम अभीतक ज्यों-का-त्यों ही जीवित है। इसका एकमात्र कारण उनका धैर्य ही है।

कोई भी प्राणी यह नहीं चाहता कि हमें दु:ख हो। ऐसा कौन पुरुष होगा, जो अपनी प्रियतमासे पृथक् होनेकी

* हे चक्रवाक! कमलों तथा दिवाकालका एकमात्र हितैषी सूर्य अस्त हो गया है। विधिके विधानका अतिक्रमण कोई नहीं कर सकता। इसलिये शोकका त्याग करके तुम धैर्य धारण करो; क्योंकि विपत्तिके पार धैर्यशाली लोग ही होते हैं, दीनमना लोग विपत्तिके पार नहीं जा पाते।

इच्छा करता हो। जिसे हम प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं, जिसके प्राप्त होनेपर हम स्व-सुखको भी तुच्छ समझते हैं, उसका विषमय वियोग किसको नहीं अखरेगा, किंतु अभागे चक्रवाकके भाग्यमें तो यही दारुण वियोग बदा है। वह रात्रिमें अपनी प्रियाके साथ रह ही नहीं सकता। इसके लिये क्या उपाय है? क्या वह रात्रिभर उसके वियोगमें तड़पता ही रहे? यदि तड़पता ही रहे तो इससे क्या लाभ? क्या उसके तड़पनेसे चक्रवाकी उसके पास आ सकती है? यदि नहीं तो धैर्यका आश्रय क्यों नहीं लेता! जो अवश्यम्भावी है, जिसमें कभी हेर-फेर हो ही नहीं सकता, उसके लिये चिन्ता कैसी? धैर्य धारण करो, चित्तको स्थिर बनाओ, यह भयंकर रजनी सदा थोड़े ही बनी रहेगी। कभी-न-कभी तो इसका अन्त होगा ही। इसके अन्तके साथ ही तुम्हारी विपत्तिका भी अन्त हो जायगा। सूर्यदेवके आगमनसे जहाँ यह शर्वरी भागी कि आनन्दकी शुभ घड़ी आयी, तब तुम जी चाहे जितनी देर अपनी प्रियाके साथ आनन्द-विहार करना। बस, फिर आनन्द-ही-आनन्द है। धैर्यका फल मीठा होता है। यदि तुम वियोगकी पीड़ामें तड़प-तड़पकर प्राण दे दोगे, तो तुम्हारा अन्त दु:खमय होगा और भविष्यमें जो सुख मिलनेवाला है, उससे भी वंचित रह जाओगे। दीनतासे विपत्तिके बादल और घिर आते हैं। अधीर पुरुष विपत्तिके दलदलको पार नहीं कर सकते। वे उसमें फँसकर नष्ट हो जाते हैं, किंतु जो धैर्यवान् पुरुष हैं, वे किनारेकी ओर देखते हुए उस दलदलकी कुछ भी परवा नहीं करते। वे अविचलित-भावसे आगेकी ही ओर बढ़ते चले जाते हैं। वे बात-की-बातमें उस दलदलको पार करके किनारेपर आ खड़े होते हैं। विपत्तियोंके सागरसे पार उतरनेके लिये धैर्यरूपी जहाज ही एकमात्र अमोघ अवलम्ब है। बिना धैर्यके जहाजपर सवार हुए इस सागरको कोई पार कर ही नहीं सका है।

अपने प्रियजनके वियोगसे हम अधीर हो जाते हैं; क्योंकि वह हमें छोड़कर चल दिया। इस विषयमें अधीर होनेसे क्या काम चलेगा? क्या वह हमारी अधीरताको देखकर लौट आयेगा? यदि नहीं, तो हमारा अधीर होना व्यर्थ है। फिर हमारे अधीर होनेका कोई समुचित कारण भी तो नहीं, क्योंकि जिसने जन्म धारण किया है, उसे एक दिन मरना तो अवश्य है ही। जो जन्मा है वह मरेगा भी। सम्पूर्ण सृष्टिके कारण पितामह ब्रह्मा हैं, चराचर सृष्टि उन्हींसे उत्पन्न हुई है। अपनी आयु समाप्त होनेपर वे भी नहीं रहते; क्योंकि वे भी भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं। अत: महाप्रलयकालमें वे भी भगवान् विष्णुके शरीरमें अन्तर्धान हो जाते हैं। जब यह अटल सिद्धान्त है कि जायमान वस्तुका नाश होगा ही, तो फिर तुम उस अपने प्रियजनके शरीरका शोक क्यों करते हो? उसे तो मरना ही था, आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों। सदा कोई जीवित रहा भी है, जो वह रहता? जहाँसे आया था, वहाँ चला गया। छोड़ो उसका शोक और गाओ गुण गोविन्दके। व्यर्थके शोकमें रखा ही क्या है, एक दिन तुम्हें भी जाना ही है। जो दिन शेष हैं, उन्हें धैर्यके साथ गुणागारके गुणोंके चिन्तनमें बिताओ।

शरीरमें व्याधि होते ही हम विकल हो जाते हैं। विकल होनेसे आजतक कोई नीरोग बन सका है? उलटे और भी अधिक व्यथित हुए हैं। यह शरीर ही व्याधियोंका घर है। जाति, आयु और भोगोंको साथ लेकर ही तो यह शरीर उत्पन्न हुआ है। पूर्वजन्मके जो भोग हैं, वे तो भोगने ही पड़ेंगे। चीं-चपड़ करनेसे काम थोड़े ही चलेगा। चाहे जो करो, भोग बिना अपनी अवधि पूर्ण किये पीछा नहीं छोड़नेके। दान, पुण्य, जप, तप और ओषधि-उपचार करो अवश्य, किंतु उनसे आराम न होनेपर अधीर मत हो जाओ; क्योंकि भोगकी समाप्तिमें ही दान, पुण्य और ओषधि कारण बन जाते हैं। बिना कारणके कार्य नहीं होता, तुम्हें क्या पता है कि तुम्हारी व्याधिमें क्या कारण बनेगा। इसलिये आप्त पुरुषोंने शास्त्रमें जो उपाय बताये हैं, उन्हें ही करो। साथ ही धैर्य भी धारण किये रहो। धैर्यसे ही तुम व्याधियोंके चक्करसे सुखपूर्वक छूट सकोगे।

जीवनकी आवश्यक वस्तुएँ जब नहीं प्राप्त होती हैं तो हम अधीर हो जाते हैं। हाँ! घरमें कलको खानेके लिये मुट्ठीभर अन्न नहीं। स्त्रीकी साड़ी बिलकुल चिथड़ा बन गयी है, बच्चा भयंकर बीमारीमें पड़ा हुआ है, इसकी दवा-दारूका कुछ भी प्रबन्ध नहीं। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ? इन्हीं विचारोंमें विकल हुए हम रात-रातभर रोया करते हैं और हमारी आँखें सूज जाती हैं। ऐसा करनेसे न तो अन्न ही

आ जाता है, और न स्त्रीकी साड़ी ही नयी हो जाती है। बच्चेकी भी दशा नहीं बदलती। केवल हम ही अपनी अच्छी-भली आँखोंको सुजाकर उलटे बीमार बन जाते हैं। सोचना चाहिये, हमारे ही ऊपर ऐसी विपत्तियाँ आयी हैं, सो बात नहीं। विपत्तियोंका शिकार किसे नहीं बनना पड़ता? त्रैलोकेश इन्द्र ब्रह्महत्याके भयसे वर्षों घोर अन्धकारमें पड़े रहे। चक्रवर्ती महाराज हरिश्चन्द्र डोमके घर जाकर नौकरी करते रहे। उनकी स्त्री अपने मृत बच्चेको जलानेके लिये कफनतक नहीं प्राप्त कर सकी। सबसे ऊँचे लोकोंमें रहनेवाले सप्तर्षि भूखके कारण मरे हुए राजाके लड़केके मांसको चुराकर खाने लगे। जगत्के आदिकारण मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी चौदह वर्षोंतक घोर जंगलोंकी खाक छानते डोले। वे अपने पिता चक्रवर्ती महाराज दशरथको पावभर आटेके पिण्ड भी न दे सके। जंगलके इंगुदी-फलोंके पिण्डसे ही उन्होंने चक्रवर्ती राजाकी तृप्ति की। शरीरधारी कोई भी ऐसा नहीं है, जिसने विपत्तियोंके कड़वे फलोंका स्वाद न चखा हो। सभी उन अवश्य प्राप्त होनेवाले फलोंके स्वादसे परिचित हैं। फिर हम अधीर क्यों हों, भोग तो भोगनेसे ही समाप्त होगा। हमारे अधीर होनेसे हमारे आश्रित भी दुखी होंगे, इसलिये हम धैर्य धारण करके क्यों नहीं उन्हें समझायें? जो होना होगा, सो होगा। बस, ज्ञानी और अज्ञानियोंमें यही अन्तर है। लोक-दृष्टिमें जरा, मृत्यु और व्याधियाँ ज्ञानी-अज्ञानी दोनोंको ही होती हैं, किंतु ज्ञानी उन्हें अवश्यम्भावी समझकर धैर्यके साथ सहन करता है और अज्ञानी विकल होकर विपत्तियोंको और बढ़ा लेता है। थोड़ी या कम सभी शरीरधारियोंको आपदाएँ झेलनी पड़ती हैं।

ज्ञानी काटे ज्ञान ते, अज्ञानी काटे रोय।
मौत, बुढ़ापा, आपदा, सब काहू को होय॥

जो धैर्यका आश्रय नहीं लेते, वे दीन हो जाते हैं, परमुखापेक्षी बन जाते हैं, इससे वे और भी दुखी होते हैं। संसारमें परमुखापेक्षी बनना, दूसरेके सामने जाकर गिड़गिड़ाना, दूसरेसे किसी प्रकारकी आशा रखना—इससे बढ़कर दूसरा कष्ट और कोई नहीं है। अरे, वासनाओंका पुतला यह अभिमानी मनुष्य क्या हमारे दुःखोंको दूर कर सकता है? कोई मनुष्य आजतक किसीको सुखी बना सका है? यदि कोई इस बातका दावा करता है, तो वह झूठा है, दम्भी है और परले सिरेका स्वार्थी है। अरे, अभिमानी प्राणी! पहले तू स्वयं तो सुखी बन जा, तब दूसरोंको बनानेका प्रयत्न करना। तुझे जो अपने चार पैसोंका अभिमान है, उनका मूल्य ही क्या है? संसारके सभी रत्नोंके स्वामी धनाधिप कुबेरतक तो सुखी नहीं। उनके सामने तेरी सम्पत्तिकी गणना ही क्या है? अनन्त महासागरकी बूँदका तो कुछ अस्तित्व भी है, तेरा धन तो कुबेरके खजानेके सामने उतना भी नहीं। फिर तू दुखियोंके सामने अकड़कर यों क्यों कहता है कि मेरी ही वजहसे तुम रोटी-कपड़ा पा रहे हो। अरे, सबको रोटी-कपड़ा देनेवाला तो कोई और ही है, जो तुझे भी देता है। तू तो केवल निमित्तमात्र है।

ओ! दुःखोंसे घबड़ाये हुए अधीर मनुष्य! तू इतना व्याकुल क्यों होता है। जितना धन, जितने भोग, जितनी सम्पत्ति तेरे भाग्यमें लिखी होगी, वह तुझे अवश्य ही प्राप्त होगी। यदि तू उससे अधिककी इच्छा करके सोनेके पर्वत, सुमेरुके शिखरपर ही जाकर क्यों न बैठ जा, वहाँ भी उससे अधिक प्राप्त न होगी। और यदि मारवाड़की ऊसर भूमिमें उससे कमकी इच्छासे चला जा तो वहाँ भी तुझे कहीं-न-कहींसे उतनी ही प्राप्त हो जायगी। जब यही बात है, जब इसमें रत्तीभर भी हेर-फेर नहीं होनेका, तो फिर मेरे प्यारे! अधीर क्यों होता है? अधीर होनेमें क्या रखा है? क्यों इन घमण्डी धनिकोंके पीछे-पीछे डोलता है। अरे, तेरा घड़ा जितना बड़ा होगा, उसमें उतना ही तो पानी आयेगा। चाहे तो तू उसे अनन्त समुद्रमें ले जा या कुएँपर जाकर भर ले। जल उसमें बराबर ही आयेगा। किसी मनुष्यसे आशा मत रख। ईशोंके भी ईश सम्पूर्ण विश्वके ईश विश्वेश्वरकी शरणमें जा। संसारी भोगोंके प्रति धैर्यका अवलम्बन कर, तभी तेरा निस्तार होगा। योगिराज भर्तृहरिने क्या ही अच्छा कहा है—

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद्वा धनम्।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ च नातोऽधिकम्॥
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः।
कूपे पश्य पयोनिधावपि घटो गृह्णाति तुल्यं जलम्॥

साधकोंके प्रति—

धर्मका सार

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्॥
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

(पद्मपुराण०, सृष्टि० १९। ३५५-३५६)

धर्मसर्वस्व अर्थात् पूरा-का-पूरा धर्म थोड़ेमें कह दिया जाय तो वह इतना ही है कि जो बात अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरोंके प्रति मत करो। इसमें सम्पूर्ण शास्त्रोंका सार आ जाता है। जैसे, आपका यह भाव रहता है कि प्रत्येक आदमी मेरी सहायता करे, मेरी रक्षा करे, मुझपर विश्वास करे, मेरे अनुकूल बने और दूसरा कोई भी मेरे प्रतिकूल न रहे, मुझे कोई ठगे नहीं, मेरी कोई हानि न करे, मेरा कोई निरादर न करे, तो इसका अर्थ यह हुआ कि मैं दूसरोंकी सहायता करूँ, दूसरेकी रक्षा करूँ, दूसरेपर विश्वास करूँ, दूसरेके अनुकूल बनूँ और किसीके भी प्रतिकूल न रहूँ, किसीको ठगूँ नहीं, किसीकी कोई हानि न करूँ, किसीका निरादर न करूँ, आदि-आदि। इस प्रकार आप स्वयं अनुभवका आदर करें तो आप पूरे धर्मात्मा बन जायँगे।

मेरी कोई हानि न करे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीकी हानि न करूँ—यह अपने हाथकी बात है। सब-के-सब मेरी सहायता करें—यह मेरे हाथकी बात नहीं है, पर इस बातसे यह सिद्ध होता है कि मैं सबकी सहायता करूँ। मेरे साथ जिन-जिनका काम पड़े, उनकी सहायता करनेवाला मैं बन जाऊँ। मुझे कोई बुरा न समझे—इससे यह शिक्षा लेनी चाहिये कि मैं किसीको बुरा न समझूँ। यह अनुभवसिद्ध बात है। कोई भी मुझे बुरा न समझे—यह अपने हाथकी बात नहीं है, पर मैं किसीको बुरा न समझूँ—यह अपने हाथकी बात है। जो अपने हाथकी बात है, उसे करना ही धर्मका अनुष्ठान है। ऐसा करनेवाला पूरा धर्मात्मा बन जाता है। जो धर्मात्मा होता है, उसे सब चाहते हैं, उसकी सबको आवश्यकता रहती है। आदमी किसे नहीं चाहता? जो स्वार्थी होता है, मतलबी होता है, दूसरोंकी हानि करता है, उसे कोई नहीं चाहता; परंतु जो तनसे, मनसे, वचनसे, धनसे, विद्यासे, योग्यतासे, पदसे, अधिकारसे दूसरोंका भला करता है, जिसके हृदयमें सबकी सहायता करनेका, सबको सुख पहुँचानेका भाव है, उसे सब लोग चाहने लगते हैं। जिसे सब लोग चाहते हैं, वह अधिक सुखी रहता है। कारण कि अभी अपने सुखके लिये अकेले हमीं उद्योग कर रहे हैं तो उसमें सुख थोड़ा होगा, पर दूसरे सब-के-सब हमारे सुखके लिये उद्योग करेंगे तो हम सुखी भी अधिक होंगे और लाभ भी अधिक होगा।

सब-के-सब हमारे अनुकूल कैसे बनें? कि हम किसीके भी प्रतिकूल न बनें, किसीके भी विरुद्ध काम न करें। अपने स्वार्थके लिये अथवा अभिमानमें आकर हम दूसरेका निरादर कर दें, तिरस्कार कर दें, अपमान कर दें और दूसरेको बुरा समझें तो फिर दूसरा हमारा आदर-सम्मान करे, हमें अच्छा समझे—इसके योग्य हम नहीं हैं। जबतक हम किसीको बुरा आदमी समझते हैं, तबतक हमें कोई बुरा आदमी न समझे—इस बातके हम हकदार नहीं होते। इसके हकदार हम तभी होते हैं, जब हम किसीको बुरा न समझें। अब कहते हैं कि बुरा कैसे न समझें? उसने हमारा बुरा किया है, हमारे धनकी हानि की है, हमारा अपमान किया है, हमारी निन्दा की है! तो इसपर आप थोड़ी गम्भीरतासे विचार करें। उसने हमारी जो हानि की है, वह होनेवाली थी। हमारी हानि न होनेवाली हो और दूसरा हमारी हानि कर दे—यह तो हो ही नहीं सकता। परमात्माके राज्यमें हमारी जो हानि होनेवाली नहीं थी, उस परमात्माके रहते हुए दूसरा हमारी वह हानि कैसे कर देगा? हमारी तो वही हानि हुई, जो अवश्यम्भावी थी। दूसरा उसमें निमित्त बनकर पापका भागी बन गया; अतः उसपर दया करनी चाहिये। यदि वह निमित्त न बनता तो भी हमारी हानि होती, हमारा अपमान होता। वह स्वयं हमारी हानि करके,

हमारा अपमान करके पापका भागी बन गया, तो वह भूला हुआ है। भूले हुएको रास्ता दिखाना हमारा काम है या धक्का देना? कोई खड्ढेमें गिरता हो तो उसे बचाना हमारा काम है या उसे धक्का देना? अतः उस बेचारेको बचाओ कि उसने जैसे मेरी हानि की है, वैसे किसी और-की हानि न कर दे। ऐसा भाव जिसके भीतर होता है, वह धर्मात्मा होता है, महात्मा होता है, श्रेष्ठ पुरुष होता है।

'गीत-गोविन्द'की रचना करनेवाले पण्डित जयदेव एक बड़े अच्छे संत हुए हैं। एक राजा उनपर बहुत भक्ति रखता था और उनका सब प्रबन्ध अपनी ओरसे ही किया करता था। जयदेवजी त्यागी थे और गृहस्थ होते हुए भी 'मुझे कुछ मिल जाय, कोई धन दे दे'—ऐसा नहीं चाहते थे। उनकी स्त्री भी बड़ी विलक्षण पतिव्रता थी; क्योंकि उनका विवाह भगवान्‌ने करवाया था, वे विवाह करना नहीं चाहते थे। एक दिनकी बात है, राजाने उन्हें बहुत-सा धन दिया, लाखों रुपयोंके रत्न दिये। उन्हें लेकर वे वहाँसे रवाना हुए और घरकी ओर चले। रास्तेमें जंगल था। डाकुओंको इस बातका पता लग गया। उन्होंने जंगलमें जयदेवको घेर लिया और उनके पास जो धन था, वह सब छीन लिया। डाकुओंके मनमें आया कि यह राजाका गुरु है, कहीं जीता रह जायगा तो हमलोगोंको पकड़वा देगा। अतः उन्होंने जयदेवके दोनों हाथ काट लिये और उन्हें एक सूखे कुएँमें गिरा दिया। जयदेव कुएँके भीतर पड़े रहे। एक-दो दिनके बाद राजा जंगलमें आया। उसके आदमियोंने पानी लेनेके लिये कुएँमें लोटा डाला तो वे कुएँमेंसे बोले कि 'भाई! ध्यान रखना, मुझे लग न जाय। इसमें जल नहीं है, क्या करते हो?' उन लोगोंने आवाज सुनी तो बोले कि यह आवाज तो पण्डितजीकी है! पण्डितजी यहाँ कैसे आये! उन्होंने राजासे कहा कि 'महाराज! पण्डितजी तो कुएँमेंसे बोल रहे हैं।' राजा वहाँ गया। रस्सा डालकर उन्हें कुएँमेंसे निकाला, तो देखा कि उनके दोनों हाथ कटे हुए हैं। उनसे पूछा गया कि यह कैसे हुआ? तो वे बोले कि 'भाई! देखो, जैसा हमारा प्रारब्ध था, वैसा हो गया।' उनसे बहुत कहा गया कि बताओ तो सही, कौन है, कैसा है; परंतु उन्होंने कुछ नहीं बताया, यही कहा कि हमारे कर्मोंका फल है। राजा उन्हें अपने घरपर ले गये। उनकी मरहम-पट्टी की, दवा की और खिलाने-पिलाने आदि सब तरहसे उनकी सेवा की।

एक दिनकी बात है। जिन्होंने जयदेवके हाथ काटे थे, वे चारों डाकू साधुके वेशमें कहीं जा रहे थे। उन्हें राजाने भी देखा और जयदेवने भी। जयदेवने उन्हें पहचान लिया कि ये वे ही डाकू हैं। उन्होंने राजासे कहा कि 'देखो राजन्! तुम धन लेनेके लिये बहुत आग्रह किया करते हो। यदि धन देना हो तो वे जो चारों आदमी जा रहे हैं, वे मेरे मित्र हैं, उन्हें धन दे दो। मुझे धन दो या मेरे मित्रोंको दो, एक ही बात है।' राजाको आश्चर्य हुआ कि पण्डितजीने कभी आयु-भरमें किसीके प्रति 'आप दे दो' ऐसा नहीं कहा, पर आज इन्होंने कह दिया है। राजाने उन चारों व्यक्तियोंको बुलवाया। वे आये और उन्होंने देखा कि हाथ कटे हुए पण्डितजी वहाँ बैठे हैं तो उनके प्राण सूखने लगे कि अब कोई 'विपत्ति' आयेगी। अब ये हमें मरवा देंगे। राजाने उनके साथ बड़े आदरका बर्ताव किया और उन्हें खजानेमें ले गया। उन्हें सोना, चाँदी, मुहरें आदि खूब दिये। लेनेमें तो उन्होंने खूब धन ले लिया, पर पासमें बोझ अधिक हो गया। अब क्या करें? कैसे ले जायँ? तब राजाने अपने आदमियोंसे कहा कि इन्हें पहुँचा दो। धनको सवारीमें रखवाया और सिपाहियोंको साथमें भेज दिया। वे जा रहे थे। रास्तेमें उन सिपाहियोंमें जो बड़ा अधिकारी था, उसके मनमें आया कि पण्डितजी किसीको कभी देनेके लिये कहते ही नहीं और आज देनेके लिये कह दिया तो बात क्या है? उसने उनसे पूछा कि 'महाराज! आप बताओ कि आपने पण्डितजीका क्या उपकार किया है? पण्डितजीके साथ आपका क्या सम्बन्ध है? आज हमने पण्डितजीके स्वभावसे विरुद्ध

बात देखी है। बहुत वर्षोंसे देखता हूँ कि पण्डितजी किसीको ऐसा नहीं कहते कि तुम इसे दे दो, पर आपके लिये ऐसा कहा, तो बात क्या है?' वे चारों आपसमें एक-दूसरेको देखने लगे, फिर बोले कि 'ये एक दिन मौतके मुँहमें जा रहे थे तो हमने इन्हें मौतसे बचाया था। इससे इनके हाथ भी कटे, नहीं तो गला कट जाता। उस उपकारका ये बदला चुका रहे हैं।'

उनकी इतनी बात पृथ्वी सह नहीं सकी। पृथ्वी फट गयी और वे चारों व्यक्ति पृथ्वीमें समा गये। सिपाहियोंको बड़ी कठिनाई हो गयी कि अब धन कहाँ ले जायँ। वे तो पृथ्वीमें समा गये। जब वे वहाँसे लौट पड़े और आकर सब बातें बतायीं। उनकी बात सुनकर पण्डितजी जोर-जोरसे रोने लगे। रोते-रोते आँसू पोंछने लगे तो उनके हाथ पूरे हो गये।

यह देखकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या तमाशा है! हाथ कैसे आ गये! राजाने सोचा कि वे इनके कोई घनिष्ठ मित्र थे, इसलिये उनके मरनेसे पण्डितजी रोते हैं। उनसे पूछा कि 'महाराज! बताओ तो सही, बात क्या है? हमें तो आप उपदेश देते हैं कि शोक नहीं करना चाहिये, चिन्ता नहीं करना चाहिये, फिर मित्रोंका नाश होनेसे आप क्यों रोते हैं? शोक क्यों करते हैं?' तब वे बोले कि 'ये जो चार आदमी थे, इन्होंने ही मुझसे धन छीन लिया और हाथ काट दिया था।'

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—'महाराज, हाथ काटनेवालोंको आपने मित्र कैसे कहा?' जयदेव बोले—'राजन्! देखो, एक जबानसे उपदेश देता है और एक क्रियासे उपदेश देता है। क्रियासे उपदेश देनेवाला ऊँचा होता है। मैंने जिन हाथोंसे आपसे धन लिया, रत्न लिये, वे हाथ काट देने चाहिये। यह काम उन्होंने कर दिया और धन भी ले गये। अतः उन्होंने मेरा उपकार किया, मुझपर कृपा की, जिससे मेरा पाप कट गया। इसलिये वे मेरे मित्र हुए। रोया मैं इस बातके लिये कि लोग मुझे संत कहते हैं, अच्छा पुरुष कहते हैं, पण्डित कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं, किंतु मेरे कारण उन बेचारोंके प्राण चले गये। अतः मैंने भगवान्‌से रोकर प्रार्थना की कि हे नाथ! मुझे लोग अच्छा आदमी कहते हैं तो बड़ी भूल करते हैं। मेरे कारण आज चार आदमी मर गये तो मैं अच्छा कैसे हुआ? मैं बड़ा दुष्ट हूँ। हे नाथ! मेरा अपराध क्षमा करो। अब मैं क्या कर सकता हूँ।'

राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोला—'महाराज! आप अपनेको अपराधी मानते हैं कि चार आदमी मेरे कारण मर गये, तो फिर आपके हाथ कैसे आ गये?' वे बोले कि 'भगवान् अपने जनके अपराधोंको, पापोंको, अवगुणोंको देखते ही नहीं। उन्होंने कृपा की तो हाथ आ गये।' राजाने कहा—'महाराज! उन्होंने आपको इतना दुःख दिया तो आपने उन्हें धन क्यों दिलवाया?' वे बोले—'देखो राजन्! उन्हें धनका लोभ था और लोभ होनेसे वे और किसीके हाथ काटेंगे; अतः विचार किया कि आप धन देना ही चाहते हैं तो उन्हें इतना धन दे दिया जाय कि जिससे बेचारोंको कभी किसी निर्दोषकी हत्या न करनी पड़े। मैं तो सदोष था, इसलिये मुझे दुःख दे दिया; परंतु वे किसी निर्दोषको दुःख न दे दें, इसलिये मैंने उन्हें भरपेट धन दिलवा दिया।' राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ! उसने कहा कि 'आपने मुझे पहले क्यों नहीं बताया?' वे बोले कि 'महाराज! यदि पहले बताता तो आप उन्हें दण्ड देते। मैं उन्हें दण्ड नहीं दिलाना चाहता था। मैं तो उनकी सहायता करना चाहता था; क्योंकि उन्होंने मेरे पापोंका नाश किया, मुझे क्रियात्मक उपदेश दिया। मैंने तो अपने पापोंका फल भोगा, इसलिये मेरे हाथ कट गये। नहीं तो भगवान्‌के दरबारमें, भगवान्‌के रहते हुए कोई किसीको अनुचित दण्ड दे सकता है? कोई नहीं दे सकता। यह तो उनका उपकार है कि मेरे पापोंका फल भुगताकर मुझे शुद्ध कर दिया।'

इस कथासे सिद्ध होता है कि सुख या दुःखको देनेवाला कोई दूसरा नहीं है; कोई दूसरा सुख-दुःख देता है—यह समझना कुबुद्धि है—**'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा'**

(अध्यात्म-रामायण २।६।६)। दुःख तो हमारे प्रारब्धसे मिलता है, पर उसमें कोई निमित्त बन जाता है तो उसपर दया करनी चाहिये कि बेचारा व्यर्थमें ही पापका भागी बन गया! रामायणमें आता है कि वनवासके लिये जाते समय रात्रिमें श्रीरामजी निषादराज गुहके यहाँ ठहरे। निषादराजने कहा—

कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहिं रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुखु दीन्ह॥

(रा०च०मा० २।९१)

तब लक्ष्मणजीने कहा—

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।
निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

(रा०च०मा० २।९२।४)

अतः दूसरा मुझे दुःख देता है, मेरा अपमान करता है, मेरी निन्दा करता है, मुझे कष्ट पहुँचाता है, मेरी हानि करता है—ऐसा जो विचार आता है, यह कुबुद्धि है, नीची बुद्धि है। वास्तवमें दोष उसका नहीं है, दोष है हमारे पापोंका, हमारे कर्मोंका। इसलिये परमात्माके राज्यमें कोई हमें दुःख दे ही नहीं सकता। हमें जो दुःख मिलता है, वह हमारे पापोंका ही फल है। पापका फल भोगनेसे पाप कट जायगा और हम शुद्ध हो जायँगे। अतः कोई हमारी हानि करता है, अपमान करता है, निन्दा करता है, तिरस्कार करता है, वह हमारे पापोंका नाश कर रहा है—ऐसा समझकर उसका उपकार मानना चाहिये, प्रसन्न होना चाहये।

किसीके द्वारा हमें दुःख हुआ तो वह हमारे प्रारब्धका फल है, परंतु यदि हम उस आदमीको खराब समझेंगे, अन्य समझेंगे, उसकी निन्दा करेंगे, तिरस्कार करेंगे, दुःख देंगे, दुःख देनेकी भावना करेंगे तो अपना अन्तःकरण मैला हो जायगा, हमारी हानि हो जायगी। इसलिये संतोंका यह स्वभाव होता है कि दूसरा उनकी बुराई करता है, तो भी वे उसकी भलाई करते हैं—

उमा संत कइ इहइ बड़ाई। मंद करत जो करइ भलाई॥

(रा०च०मा० ५।४१।७)

ऐसा संत-स्वभाव हमें बनाना चाहिये। अतः कोई दुःख देता है तो उसके प्रति सद्भावना रखो, उसे सुख कैसे मिले—यह भाव रखो। उसमें दुर्भावना करके मनको मैला कर लेना मनुष्यता नहीं है। इसलिये तनसे, मनसे, वचनसे सबका हित करो, किसीको दुःख न दो। जो तन-मन-वचनसे किसीको दुःख नहीं देता, वह इतना शुद्ध हो जाता है कि उसका दर्शन करनेसे पाप नष्ट हो जाते हैं—

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुःख।
तुलसी पातक हरत है, देखत उसको मुक्ख॥

नारायण! नारायण!! नारायण!!!

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्। परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते॥

संसारमें जन्म-मरणका चक्र चलता ही रहता है, परंतु जन्म लेना उसीका सफल है; जिसके जन्म लेनेसे वंशकी उन्नति हो। **[भर्तृहरि-नीतिशतक]**

सन्त श्रीयोगत्रयानन्दजीके वचनामृत

[गतांकका शेष]

(संकलन—श्रीनकुलेश्वरजी मजूमदार)

प्रश्न—मलिनताके आवरण कौन-कौन-से हैं?

उत्तर—मल, मूत्र, राग, द्वेष और अभिमान आदि हमारे मल हैं। इनमें मलमूत्रादि बाहरके मल हैं, और राग-द्वेष तथा अभिमान आदि भीतरके। इन मलोंने ही हमको मलिन कर रखा है, इन्होंने ही हमें ढक रखा है। जो इन दोनों प्रकारके मलोंको नष्ट कर सकते हैं, वही निर्मल हैं, उन्हींको भगवान्‌के दर्शन होते हैं।

प्रश्न—यह मल कैसे दूर हो सकते हैं?

उत्तर—बाहरका मल स्नानादिसे दूर होता है, और भीतरका ध्यानादि करनेसे।

प्रश्न—भीतरका मल दूर करनेके लिये किसका ध्यान करना चाहिये?

उत्तर—जो अपनी सारी मलिनताको धोकर स्वच्छ हो गये हैं, ऐसे भगवान्‌के परम भक्त साधु महापुरुषोंका ध्यान करनेसे भीतरका मल सहज ही दूर हो सकता है। गंगाजी आदि तीर्थोंमें स्नान करनेसे मनुष्य जितना पवित्र होता है, साधुसंग और साधु महापुरुषका ध्यान करनेसे उसकी अपेक्षा कहीं अधिक पवित्र हो जाता है। साधु-संग और साधु-ध्यानका माहात्म्य बहुत ज्यादा है। पापी मनुष्यके गंगाजीमें स्नान करनेपर उसी समय सब पाप दूर हो जाते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं; परंतु वह फिर भी पाप कर सकता है। लेकिन पापी यदि किसी महापुरुषका संग या उनका ध्यान करता है तो वह महापुरुष कृपा करके उसे ज्ञान-गंगामें नहला देते हैं। जिस अज्ञानके वशमें होकर वह पाप करता था, उस अज्ञानको दूर कर देते हैं, उसकी पापप्रवृत्तिको सदाके लिये मिटा देते हैं। इसीलिये महापुरुषकी कृपासे नरकका कीड़ा भी स्वर्गके देवताके रूपमें परिणत हो जाता है।

प्रश्न—भगवान्‌का ध्यान न करके उनके भक्तका ध्यान करनेकी बात क्यों कही जाती है?

उत्तर—भगवान्‌का ध्यान करनेसे जो फल होता है, भगवान्‌के असली भक्तका ध्यान करनेसे भी वही फल होता है, इसका यही कारण है कि असली भक्तमें और भगवान्‌में अभेद है। नित्य-निरन्तर भगवान्‌का चिन्तन करते-करते 'तद्भावसे भावित' होकर भक्त भगवान्‌के समान हो जाता है। इसीसे देवर्षि नारदजीने कहा है कि 'तन्मय होनेके कारण भक्तमें और भगवान्‌में अभेद है।' इसीलिये भक्तका ध्यान करनेमें भगवान्‌का ही ध्यान होता है। फिर साधु महापुरुषोंको तो हम अपनी आँखोंसे देखते हैं, इससे उनका ध्यान करना है भी सहज। भगवान्‌को हमने कभी देखा नहीं, इसलिये उनका ध्यान कठिन है। जिसको हमने कभी नहीं देखा, उसका ध्यान कैसे कर सकते हैं? यदि कोई करे भी तो भगवान्‌का ध्यान आरम्भ करनेपर ठीक ध्यान हुआ कि नहीं, यह समझनेका क्या उपाय है? तुमने अपने मनमें भगवान्‌के जिस रूपकी कल्पना की है, तुम उसीका ध्यान कर रहे हो। वह ध्यान भगवान्‌के ही रूपका ध्यान है या नहीं, इस बातका पता तो तुम्हें तभी लग सकेगा, जब तुम भगवान्‌के असली रूपके साथ अपने ध्यानके रूपका मिलान करोगे। और वह असली रूप तुमने कभी देखा नहीं, अतएव ध्यान ठीक हुआ कि नहीं यह जाननेका कोई उपाय नहीं है। परंतु महापुरुषको तुमने प्रत्यक्ष देखा है, उसकी पवित्र मूर्तिका ध्यान शुरू करते ही तुम यह जान सकते हो कि तुम्हारे चित्तमें उनका रूप ठीक-ठीक आ रहा है या नहीं? इसीसे महापुरुषका ध्यान करना सहज है। और महापुरुषकी कृपासे सहज ही भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न—अच्छा, जिसको कभी किसी साधु, भक्त, महापुरुषके दर्शन नहीं हुए, उसके लिये भी भगवान्‌के दर्शनका कोई सहज उपाय है?

उत्तर—हाँ, है। उसे दिन-रात भगवान्‌के नामका जप करना चाहिये। भगवान्‌का नाम लेते-लेते, नामके साथ ही उसके अर्थका चिन्तन करते-करते और रात-दिन '**नमो नमः**' करते-करते यदि एक बार भी मनुष्य ठीक शुद्धभावसे भगवान्‌का नाम ले लेगा, तो वह

कृतकृत्य हो जायगा, सिद्ध हो जायगा और भगवद्दर्शन प्राप्त कर सकेगा। अतएव जो रात-दिन भगवान्का नामजप करता है, वह महान् तपस्या करता है। वह प्राणायाम और ध्यानादि योग ही करता है। सदा भगवान्के नामका जप करना ही तो परम तपस्या है। हाँ, एक बात है, भगवान्का नामजप करना चाहिये सरलताके साथ—तन-मन-वचनसे।

प्रश्न—तन-मन-वचनसे नामजप करना किसको कहते हैं?

उत्तर—मुँहसे भगवान्का नाम लिया जाता है और मनमें विषयोंका चिन्तन चल रहा है, ऐसे नामजपसे पूर्ण फल नहीं मिलता। मनसे सम्भवतः नामजप होता है और हाथ विषय-कार्यमें लगे हैं, परंतु उस कार्यमें भगवद्भाव नहीं है तो ऐसे नामजपसे भी पूर्ण फल नहीं होता; इसी तरह दिनभर मनमें विषयोंका चिन्तन चलता है और दो-चार मिनट भगवान्का नाम ले लिया जाता है, इससे भी पूरा फल नहीं मिलेगा। अतएव मुखसे नामजपके साथ-ही-साथ मनमें नामके अर्थका चिन्तन होना चाहिये, और यदि विषय-कार्य करने हों तो वे भी भगवद्भावसे करने चाहिये; इस प्रकार दिनभर भगवद्भावसे भावित रहना चाहिये। ठीक-ठीक नामजप यही है। इसीके साथ सदा '**नमो नमः**' करना चाहिये, सदा भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण करना चाहिये। 'हे करुणामय! मैं तुम्हारा हूँ, इसीलिये मेरी कहलानेवाली जो कुछ भी वस्तुएँ हैं, सभी तुम्हारी हैं। मेरे समस्त जन्मोंके जो कुछ भी कर्म हैं, सब तुम्हारे हैं, मैं दिनभर जो कुछ सोचता या करता हूँ, वह सब भी तुम्हारा ही है।' इस प्रकार सदा-सर्वदा भगवान्के प्रति आत्मसमर्पण करना चाहिये और समय मिलते ही जितना अधिक हो सके एक मनसे भगवान्का नामजप करना चाहिये। ऐसा नामजप ही तन-मन-वचनसे किया कहलाता है। यह एक परम तप है। यही प्राणायाम है। यही ध्यान है और यही योग है।

प्रश्न—तन-मन-वचनसे भगवान्का नाम जपनेसे क्या फल होता है?

उत्तर—तन-मन-वचनसे एक बार भगवान्का नाम-स्मरण करनेसे इतने पापोंका नाश हो जाता है कि जितने पाप मनुष्य कर ही नहीं सकता। अतएव तन-मन-वचनसे सदा-सर्वदा भगवान्का नाम लेनेपर मनुष्य परम पवित्र होकर पवित्रतम भगवान्के दर्शन प्राप्त करे तो इसमें सन्देह ही क्या है?

प्रश्न—भगवान्के तो शिव, राम आदि बहुतेरे नामरूप हैं, इनमेंसे किस नामका जप करनेसे शीघ्र फल होता है?

उत्तर—शिव, राम आदि सभी समान हैं, इनमें किसीका भी तन-मन-वचनसे नामजप करनेपर शीघ्र फल प्राप्त होगा।

प्रश्न—अच्छा, शिव और राम आदि समान हैं तो फिर क्यों शिवने रामकी पूजा की, और क्यों रामने भी शिवका पूजन किया?

उत्तर—ऐसा करनेमें विशेष कारण भगवान्की दया है। एक परब्रह्मने ही शिव और राम दो स्वरूप धारण किये हैं। अतएव जो शिव हैं वही राम हैं, आप ही अपनी पूजा करके राममय होकर रामकी पूजा किस तरह की जाती है—इस बातकी जगत्को शिक्षा दे रहे हैं। इसी प्रकार शिव ही राम बनकर आप ही अपनी पूजा करके शिवमय होकर शिवकी पूजा किस प्रकार करनी चाहिये—इस बातकी शिक्षा दे रहे हैं। भगवान् स्वयं पुजारी बनकर यदि अपनी पूजा जीवको न सिखाते तो जीव क्या कभी उनकी पूजा करना सीख सकता? रामने दुर्गाकी पूजा की, और दुर्गाने रामको पूजा। इसका भी यही तत्त्व है। शिव राममय हुए और राम शिवमय। इसका मर्म यही है कि यदि तुम शिव-पूजा करना चाहते हो तो तुम्हें रामकी भाँति शिवमय बन जाना पड़ेगा, नहीं तो ठीक-ठीक शिव-पूजा नहीं होगी। इसी प्रकार यदि तुम रामकी पूजा करना चाहते हो तो तुम्हें पहले शिवकी तरह राममय होना पड़ेगा, नहीं तो रामपूजा ठीक-ठीक नहीं होगी। जीवको इस अमूल्य पूजाकी शिक्षा देनेके लिये ही करुणामय भगवान्ने शिवरामादि भिन्न-भिन्न स्वरूप ग्रहण किये हैं। आहा! करुणामयकी कितनी करुणा है! वस्तुतः जो शिव हैं, वही राम हैं। दोनों एक ही हैं; इनमें किसी प्रकारका भेद मत समझो।

प्रश्न—शिव और रामके नाम भी अलग-अलग हैं, और रूप भी भिन्न-भिन्न हैं। इस हालतमें इन

दोनोंको एक कैसे समझा जाय?

उत्तर—मान लो, मिट्टीकी एक पतीली है और एक मिट्टीका घड़ा है। पतीली और घड़ेके नाम भी भिन्न हैं, और रूप भी भिन्न हैं, परंतु इन दोनोंके मूलमें एक ही वस्तु है। वह वस्तु है 'मिट्टी'। पतीली और घड़ा दोनोंके टूट जानेपर क्या होगा? इनके भिन्न-भिन्न नामरूप नहीं रहेंगे, पतीलीका पतीलीपना और घड़ेका घड़ापना नहीं रहेगा, वे दोनों ही एक मिट्टी हो जायँगे। इसी प्रकार शिव और रामके नाम और रूपको हटाकर देखो तो क्या बच रहता है। तुम शायद कहोगे कि 'कुछ भी नहीं रहता।' परंतु ऐसी बात नहीं है। कुछ रहता है; वह 'कुछ' ही 'परमात्मा' है, वही बद्ध जीवपर दया करके भिन्न-भिन्न नामरूपोंको धारणकर शिव और रामके नामसे अभिहित होते हैं। इस परमात्म-तत्त्वको जिस दिन भलीभाँति जान लोगे, उसी दिन तुम ठीक-ठीक समझ सकोगे कि शिव और राममें अभेद है। [समाप्त]

पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' बलिदान-दिवसपर विशेष—

'सरफ़रोशी की तमन्ना…'

भारतमाताकी स्वतन्त्रताके लिये जिन अमर शहीदोंने अपने प्राणोंका बलिदान किया, उनमें पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। उनके द्वारा लिखा गया यह गीत उस समयके क्रान्तिकारियोंका कण्ठहार और ब्रिटिश सरकारके लिये चुनौती था—

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है।
देखना है जोर कितना बाजु-ए-क़ातिल में है।

ये चन्द्रशेखर 'आजाद', अशफाक उल्ला खाँ और भगत सिंह-जैसे क्रान्तिवीरोंके लिये प्रेरणास्त्रोत थे। ब्रिटिश-सरकार-विरोधी गतिविधियोंके कारण इन्हें १९ दिसम्बर १९२७ को गोरखपुर जिला जेलमें फाँसी दी गयी थी। माउजरके अचूक निशानेके लिये विख्यात पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' कलमके भी धनी थे। अपनी आत्मकथा 'निज जीवनकी छटा' में उन्होंने अपने जीवनकी उपलब्धियोंको माँके द्वारा दिये गये संस्कारोंका फल माना है। उनके प्रति श्रद्धाभाव उन्होंने निम्न शब्दोंमें व्यक्त किये हैं—

जन्मदात्री जननी! इस जीवनमें तो तुम्हारा ऋण-परिशोध करनेका भी अवसर न मिला। इस जन्ममें तो क्या यदि अनेक जन्मोंमें भी सारे जीवन प्रयत्न करूँ तो भी तुमसे उऋण नहीं हो सकता। जिस प्रेम तथा दृढ़ताके साथ तुमने इस तुच्छ जीवनका सुधार किया है, वह अवर्णनीय है।

× × × ×

तुम्हारी दयासे ही मैं देश-सेवामें संलग्न हो सका। धार्मिक जीवनमें भी तुम्हारे ही प्रोत्साहनने सहायता दी। जो कुछ शिक्षा मैंने ग्रहण की, उसका श्रेय भी तुम्हींको है।

× × × ×

जीवनदात्री! आत्मिक, धार्मिक तथा सामाजिक उन्नतिमें तुम्हीं मेरी सदैव सहायक रही। जन्म-जन्मान्तरमें परमात्मा ऐसी ही माता दे—यही इच्छा है।

बिस्मिलको काकोरी क्रान्तिकारी षड्यन्त्रमें १९ दिसम्बर, सन् १९२७ ई०को सुबह ७ बजे फाँसी दे दी गयी। 'वन्दे मातरम्, भारतमाताकी जय, ब्रिटिश साम्राज्यका अन्त हो' कहते हुए बिस्मिलने प्राण न्योछावर कर दिये। फाँसीसे एक दिन पहले १८ दिसम्बरको बूढ़े माँ-बाप गोरखपुर जेलमें बेटेसे मिलने आये। बिस्मिलकी आँखोंमें आँसू देखकर माँ सिंहनी-सी दहाड़ी—मैंने सब लोगोंसे कहा कि देखना मेरा लाल हँसते-हँसते फाँसीपर झूल जायगा, परंतु तेरी आँखोंमें आँसू? मैं शर्मसे मरी जा रही हूँ। तभी बिस्मिलने उत्तर दिया—माँ! ये तो खुशी नहीं सँभाल पानेके आँसू हैं। तू धन्य है। तेरी-जैसी वीर माँ कहाँ मिलेगी, जो ऐसी अवस्थामें भी एक दिन पहले अपने पुत्रको डाँटे। भगवान्से प्रार्थना है कि मेरा अगला जन्म भी तेरी-जैसी वीर माताकी कोखसे ही हो।

गीताका अध्ययन क्यों ?

(डॉ० श्रीप्रभुनारायणजी मिश्र)

गीतामें कुल सात सौ श्लोक एवं अठारह अध्याय हैं। यदि मूल-ग्रन्थका पाठ (संस्कृत भाषामें) सामान्य गतिसे किया जाय तो लगभग दो घंटे लगते हैं। हिन्दी या अंग्रेजीमें सानुवाद पढ़नेमें चार-पाँच घंटे लग सकते हैं। विषयवस्तुको हृदयंगम करते हुए पढ़ा जाय तो व्यक्तिगत क्षमतानुसार कुछ भी समय लग सकता है, परंतु यदि गीताकी शिक्षाओंको पूरी तरह आत्मसात् करते हुए और उसके अनुसार अपने व्यवहार एवं स्वभावमें परिवर्तन करते हुए इसका अनुशीलन किया जाय तो पूरा जीवन भी व्यतीत हो सकता है। प्रश्न है कि गीता पढ़ी ही क्यों जाय? बहुतसे ऐसे लोग होंगे, जिन्होंने शायद गीताका एक भी श्लोक न पढ़ा हो। वे भी जी रहे हैं। यदि वे गीताका अध्ययन कर लेते तो उन्हें क्या लाभ हुआ होता? यदि वे गीताकी शिक्षाओंको हृदयंगम करके उसके अनुसार अपनेको ढाल लेते तो वे किस प्रकारके व्यक्ति बन जाते? आदि ऐसे प्रश्न हैं, जिन्हें आज गीताका अध्ययन शुरू करनेके पहले कोई भी तार्किक व्यक्ति उठाना चाहेगा और इन प्रश्नोंका वह सन्तोषजनक उत्तर भी चाहेगा। उसका समय कीमती है। वह अपने समयका सोच-विचारकर ही प्रयोग करना चाहेगा। यदि व्यक्तिके पास पर्याप्त समय हो भी तो वह उसे गीताका अध्ययन करनेमें क्यों लगाये? उस समयमें वह कोई अन्य कार्य क्यों न कर ले या वह अपने समयको यूँ ही व्यर्थ बैठे-बैठे क्यों न बिता दे?

गीता उपन्यास या कहानीकी तरह कोई मनोरंजक पुस्तक तो है नहीं कि व्यक्ति मात्र मन बहलावके लिये इसे पढ़े, यह जीवनका गम्भीर दर्शनशास्त्र है और इसे गम्भीरतासे ही पढ़ना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति मात्र श्रद्धाभावसे ही इसे नहीं पढ़ेगा, हिन्दुओंका एक छोटा-सा समुदाय इस ग्रन्थको अवश्य श्रद्धा-भावसे पढ़ता है। शेष लोग गीताके अध्ययनका व्यावहारिक लाभ चाहेंगे। यह अलग बात है कि व्यावहारिक लाभकी दृष्टिसे पढ़ते-पढ़ते श्रद्धाभाव भी जाग्रत् हो जाय।

मैं गीताका एक सामान्य-सा अध्येता हूँ। गीताका पण्डित कहलानेकी न मैं पात्रता रखता हूँ और न ही दम्भ। मेरा मानना है कि यदि आप कभी अनिर्णयकी स्थितिसे नहीं गुजरे हैं, निराशा तथा कुण्ठाके शिकार नहीं हुए हैं तो आपको गीता पढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यदि कर्तव्यपालन करनेमें आप हिचकते नहीं, छोटोंका मार्गदर्शन करने और बड़ोंकी आज्ञाका पालन करनेमें आप अपनेको असमर्थ नहीं पाते तो आपको गीताका अध्ययन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

यदि आप ईर्ष्या, घृणा, क्रोध आदि ऋणात्मक मनोभावोंके शिकार नहीं होते तो आपको गीता पढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। यदि सफलता आपके हाथसे सरकती नहीं, सफल और समृद्ध होनेके साथ-साथ आप प्रसन्न भी हैं तो आपको गीता पढ़नेकी आवश्यकता नहीं है। अपना तटस्थ मूल्यांकन करके देखिये। यदि आप कभी कर्तव्यपालन करनेसे विचलित हुए हैं, यदि आप कुण्ठा तथा निराशाके शिकार हुए हैं, तो गीता आपकी सहायता अचूक रूपसे कर सकती है। यदि ईर्ष्या, घृणा, क्रोध आदि ऋणात्मक मनोभावोंने आपको कभी हराया है और आप इनपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो निश्चित रूपसे आपको गीताका अध्ययन करना चाहिये। यदि आप असफल हो गये हैं या सफल एवं समृद्ध होकर भी प्रसन्न नहीं हैं तो गीता आपका मार्गदर्शन कर सकती है। मनुष्यमें पूर्वोक्तमेंसे कोई-न-कोई अपूर्णता रहती ही है, अत: गीता उसके लिये शाश्वत रूपसे उपयोगी ग्रन्थ है। यह शाश्वत एवं परम मनोविज्ञान तथा आत्मविकासकी पूर्ण निर्देशिका है। यह देश, काल एवं परिस्थितियोंसे परे एक जीवन-दर्शन है। गीताका दर्शन जहाँ अत्यन्त गहरा है, वहीं इसमें बताये गये आत्मोन्नतिके उपाय उतने ही सरल, सर्वजनसुलभ एवं प्रभावशाली हैं। गीता पाँच हजारसे अधिक वर्षोंसे लोगोंका मार्गदर्शन कर रही है और आगे भी करती रहेगी।

गीताका शाब्दिक अर्थ है गाया हुआ। गीताका पूर्ण नाम भगवद्गीता है, जिसे सम्मानके साथ श्रीमद्भगवद्गीता कहते हैं, जिसका अर्थ है—भगवान्‌द्वारा गाया हुआ गीत या दिया गया उपदेश। श्रीमद्भगवद्गीता अपने-आपमें एक स्वतन्त्र ग्रन्थ न होते हुए भी महान् और विलक्षण ग्रन्थ है। वस्तुत: श्रीमद्भगवद्गीता महाभारतका एक अंश है। महाभारत

अठारह पर्वों (भागों)-में विभाजित है। हर एक पर्वमें कई-कई अध्याय हैं। महाभारतका एक पर्व है—भीष्मपर्व। वस्तुत: भीष्मपर्वके अध्याय पच्चीससे लेकर अध्याय बयालीसतक श्रीमद्भगवद्गीताके क्रमश: अध्याय एकसे अध्याय अठारह सन्निहित हैं। महाभारतमें भीष्मपर्व और भीष्मपर्वमें रखी हुई है भगवद्गीता। ऐसा लगता है कि वेदव्यास गीतारत्नको महाभारतके अन्तर्गत बहुत सहेजकर रखना चाहते थे। सन्दूकके अन्दर छोटा सन्दूक और छोटे सन्दूकमें रखा गया मूल्यवान् रत्न।

महाभारतके विशाल रणांगणमें पाण्डव और कौरव अपनी विशाल सेनाओंके साथ डट गये हैं। श्रीकृष्ण अर्जुनका रथ चला रहे हैं। युद्धका शंखनाद हो चुका है। पाण्डवोंके पक्षका महान् योद्धा अर्जुन दोनों सेनाओंको देखना चाहता है। अत: वह सारथीकी भूमिकामें बैठे, रथ ही नहीं जीवनरथकी भी बागडोर सँभाले श्रीकृष्णसे अपना रथ दोनों सेनाओंके मध्य ले चलनेको कहता है—

'सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मे अच्युत॥'

श्रीकृष्ण अर्जुनका रथ दोनों सेनाओंके मध्यमें लाकर खड़ा कर देते हैं। अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये उसके सारे सगे-सम्बन्धी ही खड़े हैं—ताऊ, मामा, चाचा, भानजे, भतीजे, साले, बहनोई आदि। अपने सगे-सम्बन्धियोंसे ही लड़ना है अर्जुनको। युद्धका परिणाम वैसे भी अनिश्चित होता है। अर्जुन संशयमें है कि वह विजयी होगा या पराजित—

'यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।'

वह अनिश्चय, मोह और किंचित् भयसे भी ग्रस्त है। वह मैदान छोड़कर भागना चाहता है। भागनेके पक्षमें बड़े-बड़े तर्क खड़े कर देता है। वह अपने तर्कोंसे पूर्ण सन्तुष्ट भी नहीं है। अन्यथा मैदान छोड़कर भाग भी गया होता। वह कृष्णकी सहमति चाहता है। कहता है आपका शिष्य हूँ, आपकी शरणमें हूँ—

'शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।'

श्रीकृष्ण-जैसा गुरु अपने शिष्यको मैदान छोड़कर भागनेका उपदेश कैसे दे सकता है? भागनेसे तो मृत्यु अच्छी है। पलायन करनेसे प्रतिष्ठा नष्ट होती है और युद्ध करनेसे विजय या वीरगति प्राप्त होती है। दोनों ही प्रतिष्ठा नष्ट होनेकी तुलनामें श्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण गीताके उपदेशके द्वारा अर्जुनको पलायन करनेसे रोकते हैं। अर्जुन कर्तव्य-मार्गपर वापस आता है। युद्ध करता है और विजयी होता है। भागनेवालेके लिये सफलताका द्वार सदाके लिये बन्द हो जाता है। विजयी और सफल होनेकी सम्भावना प्रयत्न करनेवालेके लिये ही रहती है। हम भी अनिर्णयग्रस्त होते हैं, हम भी कर्तव्यसे पलायन करनेके लिये तर्क ढूँढ़ते हैं, हम सब जीवनमें कभी-न-कभी शोक और मोहग्रस्त होते हैं। अत: गीता हम सबके लिये है—मनुष्यमात्रके लिये है।

श्रीकृष्ण अर्जुनका रथ चला रहे हैं। हम सब संसार-समरके अर्जुन हैं। हमारा भी रथ श्रीकृष्ण चला रहे हैं। वे सनातन सारथी हैं। वे हम सभीका रथ चला रहे हैं। अज्ञान और अहंकारके कारण हम उन सनातन सारथीको देख नहीं पाते। श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन हमारी आँखोंपरसे अज्ञानका पर्दा हटाकर हमें भय एवं अहंकारसे मुक्त कर देता है। हम अपनेको भी देख पाते हैं और अपने सनातन सारथीको भी। यदि हम भयमुक्त हो गये तो हमारे लिये कुछ भी असम्भव नहीं है।

महाभारतका युद्ध आन्तरिक भी है और बाह्य भी। आन्तरिक युद्धमें विजयी होना बाह्य युद्धमें विजयी होनेसे कठिन है। मनमें वृत्तियोंका संग्राम चलता रहता है। यह आन्तरिक महाभारत है। जो आन्तरिक महाभारतमें विजयी हो गया, उसके लिये बाह्य महाभारतमें विजयी होना कठिन नहीं रहता। गीता आन्तरिक युद्धमें विजयी होनेके लिये हमें तैयार करती है। यह हमें आत्मानुशासन और आत्मोन्नतिका सोपानबद्ध उपाय बताती है।

श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोकोंके कई अर्थ एवं उनके आशयके कई तल हैं। अपने अनुभव और परिपक्वताके अनुसार ये अनेक अर्थ और तल हमपर उद्घाटित होते रहते हैं। इस प्रकार गीता सबके लिये शाश्वत मार्गदर्शक बनी रहती है।

अत: यदि हम शोक, भय एवं मोहसे ग्रस्त हैं, कर्तव्याकर्तव्यका निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हैं, सब कुछ रहते हुए भी शान्त और प्रसन्न नहीं हैं, सफलतासे वंचित एवं अतृप्त हैं तो हमें गीताका अध्ययन करना चाहिये। गीता परम मनोविज्ञान है, यह शाश्वत मनोविज्ञान है तथा आत्मोन्नतिके लिये मार्गदर्शन प्रदान करनेमें पूर्ण समर्थ है। वेदव्यास कहते हैं—गीताका ही अच्छी प्रकार अध्ययन कर लेना पर्याप्त है। गीताका अच्छी प्रकार अध्ययन कर लेनेपर अन्य शास्त्रोंका कोई प्रयोजन नहीं रहता—

'गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।'

तीर्थ-दर्शन—

श्रीकृष्णजन्मभूमिका इतिहास

[युगावतार श्रीवज्रनाभ—एक ऐतिहासिक शोध]

(श्रीमहावीर सिंहजी)

विडम्बनाकी बात है कि पौराणिक विवरणोंके अतिरिक्त समय-समयपर भारतीय तथा विदेशी प्रसिद्ध इतिहासकारोंने मथुरामंडल (शूरसेनप्रदेश)-पर श्रीवज्रनाभकी शासन-सत्ताका उल्लेख किया है, लेकिन अधिकांश भारतीय कलियुगमें यदुवंशकी स्थापना करनेवाले श्रीकृष्णके प्रपौत्र (श्रीकृष्ण-प्रद्युम्न-अनिरुद्ध-वज्रनाभ) श्रीवज्रनाभजीका नामतक नहीं जानते हैं। आज संसारका प्रत्येक धार्मिक व्यक्ति जो इस पावन व्रजभूमिकी रजको मस्तकपर लगानेके लिये व्रजकी ओर भागा चला आ रहा है, इसकी पुनर्स्थापना श्रीवज्रनाभजीने की थी।

आज जब हम भारतीय इतिहासको उठाकर देखते हैं तो प्राय: सभी प्रसिद्ध इतिहासकारोंने कृष्णकाल वर्णनमें मथुरामें शूरसेनाधिपति या राजाके रूपमें श्रीवज्रनाभजीका उल्लेख किया है, क्योंकि वज्रनाभ एक पौराणिक तथा ऐतिहासिक सत्य हैं।

श्रीवज्रनाभजीके उल्लेखकी भूमिका यदुवंश-विनाशसे आरम्भ होती है, जिसका वर्णन महाभारत, श्रीमद्भागवत तथा गर्गसंहितामें विस्तारसे दिया है।

मथुरामें शासन-सत्ता

श्रीकृष्णके महाप्रयाणके बाद कलियुग आरम्भ हो चुका था। द्वारकासे अर्जुनद्वारा लाये गये शेष बालकोंमें एक श्रीकृष्णका प्रपौत्र वज्रनाभ भी था। उस समय उसकी किशोरावस्था (१६वर्ष) थी। पाण्डवोंके हिमालय-महाप्रस्थानसे पूर्व राजा युधिष्ठिरने अर्जुनके पौत्र परीक्षित्‌को हस्तिनापुरका तथा वज्रनाभको इन्द्रप्रस्थका राजा घोषित किया। परीक्षित् अवस्थामें वज्रनाभसे बड़े थे। कुछ समय बाद वज्रनाभकी इच्छा हुई कि क्यों न अपने पूर्वजोंकी मूल राजधानी मथुरा चला जाय। वज्रनाभकी इच्छाके अनुसार परीक्षित्‌ने शूरसेनाधिपतिके रूपमें उनके नेतृत्वमें मथुरामें यादव-राज्यकी पुन: स्थापना की। उस समय मथुरानगरी तथा पूरा व्रजमण्डल जरासन्ध एवं कालयवनके बार-बारके आक्रमणोंसे नष्ट हो चुका था। यादवोंके द्वारका-पलायन करनेके कारण ब्रजमण्डल सूना हो गया था। वज्रनाभने इधर-उधर बिखरे हुए

यदुवंशियोंको संगठितकर उनसे मथुराको आबाद किया, फिर भी वहाँपर उद्योग, व्यापार, विद्या और कलाका विकास नहीं हो पा रहा था।

स्कन्दपुराणोक्त श्रीमद्भागवत-माहात्म्य, अ०१ में इसका वर्णन विस्तारसे है। वज्रनाभके मथुरामें राज्यारोहणके कुछ दिन बाद सम्राट् परीक्षित् वज्रनाभसे मिलने मथुरा गये। वज्रनाभने उनका बड़ा स्वागत किया। तब राजा परीक्षित्ने कहा—'हे तात! तुम्हारे पिता और पितामहने मेरे पिता-पितामहको बड़े-बड़े संकटोंसे बचाया है। मेरी रक्षा भी उन्होंने ही की है। प्रिय वज्रनाभ! यदि मैं उनके उपकारोंका बदला चुकाना चाहूँ तो किसी प्रकार नहीं चुका सकता। इसलिये मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम सुखपूर्वक अपने राज-काजमें लगे रहो। तुम्हें अपने खजानेकी, सेनाकी तथा शत्रुओंकी कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये। यदि कभी तुम्हारे ऊपर कोई आपत्ति-विपत्ति आये अथवा किसी कारणवश तुम्हारे हृदयमें अधिक क्लेशका अनुभव हो तो मुझसे बताकर निश्चिन्त हो जाना, मैं तुम्हारी सारी चिन्ताएँ दूर कर दूँगा।' तब वज्रनाभने कहा—महाराज! आपका कथन सत्य है। यद्यपि मैं मथुरामण्डलके राज्यपर अभिषिक्त हूँ, फिर भी मैं यहाँ निर्जन वनमें ही रहता हूँ। इस बातका मुझे कुछ भी पता नहीं है कि यहाँकी प्रजा कहाँ चली गयी, क्योंकि राज्यका सुख तो तभी है, जब प्रजा रहे। जब वज्रनाभने परीक्षित्से यह बात कही, तब उन्होंने इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली)-से हजारों बड़े-बड़े सेठोंको बुलाकर मथुरामें रहनेकी जगह दी। इसके अलावा मथुरामण्डलके ब्राह्मणों, व्यापारियों तथा कारीगरोंको बुलवाया और मथुरामें बसाया। इस प्रकार मथुरा पुनः एक समृद्ध नगरीका रूप धारण करने लगी, यद्यपि उसे पहले-जैसा (उग्रसेनके राज्यकी भाँति) गौरव प्राप्त नहीं हो सका था।

श्रीकृष्णलीला-स्थलोंकी खोज तथा स्थापना

मथुरामें राजकीय व्यवस्था कायम करनेके बाद वज्रनाभकी इच्छा हुई कि अपने गौरवशाली प्रपितामह भगवान् श्रीकृष्णके लीला-स्थलोंकी खोजकर स्मृति-चिह्न बनवाये जायँ, जिससे श्रीकृष्ण-भक्तिका प्रचार हो। शूरसेनप्रदेश और मथुरा नगरको विगत वर्षोंमें जिन विषम परिस्थितियोंका सामना करना पड़ा था, उसके कारण श्रीकृष्णके वे प्राचीन लीला-स्थल नष्ट हो गये थे। उन्हें बतानेवाला वहाँ कोई उपयुक्त व्यक्ति भी नहीं रहा था। तब राजा परीक्षित्ने वज्रनाभसे परामर्शकर नन्द आदि गोपोंके कुलपुरोहित वयोवृद्ध महर्षि शाण्डिल्यको बुलवाया। राजा परीक्षित्ने वज्रनाभकी बात उन्हें कह सुनायी। तब शाण्डिल्यजीने वज्रनाभसे कहा कि—हे राजन्! 'व्रज' शब्दका अर्थ है 'व्याप्ति'। इस पुरातन वचनके अनुसार व्यापक होनेके कारण ही इस भूमिका नाम 'व्रज' पड़ा है। सत्त्व, रज, तम—इन तीन गुणोंसे अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है, इसलिये उसे 'व्रज' कहते हैं। इस परब्रह्मस्वरूप व्रजधाममें नन्दनन्दन भगवान् श्रीकृष्णका निवास है। प्रेमरसमें डूबे हुए रसिकजन ही उनका अनुभव करते हैं। तुम दोनों भगवान्की जिस लीलाको देख रहे हो, यह व्यावहारिकी लीला है। यह पृथ्वी और स्वर्गलोक आदि लोक इसी लीलाके अन्तर्गत हैं। इस पृथ्वीपर यह मथुरामण्डल है। यहीं वह ब्रजभूमि है, जिसमें भगवान्की वह वास्तविक रहस्य-लीला गुप्तरूपसे होती रहती है।

इसलिये वज्रनाभ! तुम मेरी आज्ञासे यहाँ भगवान् श्रीकृष्णने जहाँ-जैसी लीला की है, उसके अनुसार उस स्थानका नाम रखकर तुम अनेकों गाँव बसाओ और इस दिव्य ब्रजभूमिका भलीभाँति सेवन करते रहो। गोवर्धन, दीर्घपुर (डीग), मथुरा, महावन (गोकुल), नन्दिग्राम (नन्दगाँव) और बृहत्सानु (बरसाना) आदिमें तुम्हें अपने लिये छावनी बनवानी चाहिये। उन-उन स्थानोंपर रहकर भगवान्की लीलाके स्थल, नदी, पर्वत, घाटी, सरोवर, कुआँ, कुण्ड और कदम्बखण्डी तथा कुंजवन आदिका सेवन करते रहना चाहिये। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि मेरी कृपासे भगवान्की लीलाके जितने भी स्थल हैं, सबकी तुम्हें ठीक-ठीक

पहचान हो जायगी। इस प्रकार राजा परीक्षित्‌की सहायता और महर्षि शाण्डिल्यकी कृपासे वज्रनाभने क्रमशः उन सभी स्थानोंकी खोज की, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण अपने प्रेमी गोप-गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी लीलाएँ करते थे। लीला-स्थलोंका ठीक-ठीक निश्चय हो जानेपर उन्होंने वहाँ-वहाँकी लीलाके अनुसार उस-उस स्थानका नामकरण किया, भगवान्‌के लीला-विग्रहोंकी स्थापना की तथा उन-उन स्थानोंपर अनेकों गाँव बसाये। स्थान-स्थानपर भगवान्‌के नामसे कुण्ड और कुएँ खुदवाये गये, कुंज और बगीचे लगवाये, शिव आदि देवताओंकी स्थापना की। गोविन्ददेव, हरिदेव आदि नामोंसे भगवद्‌विग्रह स्थापित किये। इन सब शुभ कर्मोंके द्वारा वज्रनाभने अपने राज्यमें सब ओर एकमात्र श्रीकृष्ण-भक्तिका प्रचार किया तथा भागवत-धर्मकी स्थापना की। उनके प्रजाजनोंको भी बड़ा आनन्द था और वे सदा ही वज्रनाभके राज्यकी प्रशंसा किया करते थे।

गर्गसंहिता, अश्वमेधखण्ड, अध्याय दोमें भी वज्रनाभद्वारा श्रीकृष्णके विभिन्न विग्रहोंकी स्थापनाका वर्णन मिलता है—'नृपश्रेष्ठ वज्रनाभके कुलगुरु गर्गाचार्यद्वारा गर्ग-संहिता नौ दिनोंतक सुनायी गयी। उस समय वज्रनाभकी अवस्था सोलह वर्षकी थी। गर्गजीके कहनेपर वज्रनाभने मथुरामें उसी प्रकार अश्वमेध-यज्ञ किया, जैसे हस्तिनापुरके राजा युधिष्ठिरने किया था। इसके बाद मथुरामें 'दीर्घविष्णु' और 'केशवदेव', वृन्दावनमें 'गोविन्ददेव', गिरिराज गोवर्धनपर 'हरिदेवजी', गोकुलमें 'गोकुलेश्वर' और एक योजन (चारकोस) दूर बलदेवमें 'बलदाऊजी' के अर्चाविग्रहोंकी उन्होंने स्थापना की। ये श्रीहरिकी छः प्रतिमाएँ राजा वज्रनाभद्वारा स्थापित की गयी हैं। वज्रनाभने हर्षसे भरकर लोकोंके कल्याणके लिये व्रजमण्डलमें बलदाऊजीकी पाँच अन्य प्रतिमाएँ भी स्थापित कीं।'

वर्तमान ऐतिहासिक खोज—पौराणिक विवरणोंके अतिरिक्त वज्रनाभजीद्वारा किये कार्योंका उल्लेख विभिन्न शोध ग्रन्थोंमें प्राप्त होता है, जिसका विवरण इस प्रकार है—'ब्रजका सांस्कृतिक इतिहास' तथा 'ब्रजके धर्म-सम्प्रदायोंका इतिहास' शोध ग्रन्थोंमें डॉ० प्रभुदयाल मीतलजीने श्रीवज्रनाभद्वारा किये गये श्रीकृष्णभक्तिके प्रचार तथा उनके धार्मिक कार्योंका वर्णन किया है—'श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभने मथुरामें श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर श्रीकेशवदेवजीकी मूर्ति स्थापित की थी। गोवर्धनमें श्रीवज्रनाभके पधराये श्रीहरिदेवजी थे, परंतु औरंगजेबके शासनकालमें वह वहाँसे चले गये, बादमें उनके स्थानपर दूसरी मूर्ति स्थापित की गयी। गोवर्धनमें वज्रनाभके पधराये हुए चक्रेश्वर महादेवका मन्दिर है। गोकुलमें गोकुलेश्वर मन्दिरका निर्माण कराया। वृन्दावनमें मदनमोहन मन्दिर भी इन्हींके द्वारा स्थापित है।'

अन्य ग्रन्थोंके अनुसार वृन्दावनमें रंगजी मन्दिरके सामने श्रीगोविन्ददेवजी (भूतोंवाला मन्दिर)-का प्राचीन मन्दिर है। श्रीगोविन्ददेवजी वज्रनाभद्वारा स्थापित थे, जिनकी मूर्ति सोलहवीं सदीमें चैतन्य महाप्रभुके शिष्य रूपगोस्वामीको मिली थी। मुगल उपद्रवके समय (औरंगजेबके कालमें) यह मूर्ति जयपुरनरेश जयसिंहद्वारा जयपुर ले जायी गयी और वर्तमानमें वहाँके राजमहलमें विराजमान है। इसके बाद वृन्दावनमें गोविन्दराजजीका दूसरा विग्रह है। मथुरामें ही होली दरवाजाके पास श्रीकंसनिकन्दन मन्दिर तथा महौलीकी पौरमें श्रीपद्मनाभ मन्दिरका निर्माण वज्रनाभजीने कराया था। श्रीकामेश्वर महादेव मन्दिर, श्रीकाशीनाथ मन्दिर-कॉमा (राजस्थान) एवं श्रीरणछोड़राय मन्दिर, द्वारका वज्रनाभजीद्वारा स्थापित हैं।

अन्य स्त्रोतोंसे प्राप्त जानकारी—महाराज वज्रनाभने गोकुलमें कर्णबेध कूपका निर्माण कराया। श्रीगिरिराज-परिक्रमाके आन्यौर गाँवमें राधा-गोविन्दजीका प्राचीन मन्दिर बनवाया। महावनमें कोले-घाटका निर्माण कराया। आदि बद्री (कॉमा)-में बूढ़ा बद्री मन्दिर बनवाया। इनके अलावा श्रीगणेश्वर महादेव मन्दिर-गणेशरा (मथुरा), श्रीदावानलबिहारी मन्दिर-दावानल

कुण्ड (वृन्दावन), श्रीवंशीवट-वृन्दावन, गोपेश्वर महादेव मन्दिर-वृन्दावन, श्रीभूतेश्वर महादेव मन्दिर-मथुरा, बन्दी-आनन्दी देवी मन्दिर-बन्दीग्राम, बड़े दाऊजी-नरीग्राम, श्रीदाऊजी मन्दिर-कमई ग्राम (बरसाना) आदि मन्दिरोंका निर्माण कराया। प्राचीन खम्भ-खामीग्राम (हरियाना)-का निर्माण कराया। एक अन्य विवरणमें दतिहा ग्राम-सतोहाके पासको बसानेका उल्लेख भी मिलता है।

वज्रनाभजीने ब्रजमें कुण्डोंका भी निर्माण कराया। राधाकुण्ड कस्बेमें स्थित राधाकुण्ड तथा उसके अन्तर्गत कंकणकुण्ड एवं श्यामकुण्ड तथा उसके अन्तर्गत वज्रनाभ कुण्ड और गोवर्धन-राधाकुण्ड परिक्रमा-मार्गके मध्य कुसुम-सरोवरके पश्चिममें उद्धवकुण्डका निर्माण कराया था। कुसुम-सरोवरका निर्माण भी वज्रनाभने कराया था। आज भी उद्धवकुण्डके शिलापट्टपर लिखे विवरणको परिक्रमार्थी पढ़कर जान सकते हैं कि यह वज्रनाभजीद्वारा निर्मित है। एक बार राधाकुण्ड कस्बेमें तमालतला घाटपर आकर चैतन्य महाप्रभु (सोलहवीं सदी) दोनों कुण्डोंका आविर्भाव करनेसे पहले बैठे थे। जिस समय श्रीमहाप्रभुने वहाँकी रज उठायी और उसका तिलक किया तो इसी स्थानपर श्रीकृष्णजीके द्वारा निर्मित एक रमणीय कुण्ड प्रकट हुआ। उसे देखकर सबको श्रीराधाकुण्ड और श्यामकुण्डका स्थान निश्चित हो गया, जो अबतक लुप्तप्राय थे। वह वज्रनाभकुण्ड इस समय श्रीश्यामकुण्डके बीचोबीच डूबा हुआ था। वज्रनाभके नामानुसार इस कुण्डका नाम भी श्रीवज्रनाभकुण्ड पड़ा। ग्रीष्मकालमें जब जल कम हो जाता है, तब वज्रनाभ कुण्डके दर्शन हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त आन्यौर गाँवमें गोविन्दकुण्ड, वृन्दावनमें दावानल कुण्ड, गणेशरा (मथुरा)-में गन्धर्वकुण्ड, जतीपुरामें सुरभिकुण्ड, कामवन (कॉमा)-में विमलकुण्ड, नन्दगाँवमें पावनकुण्ड आदिका निर्माण कराया।

श्रीवज्रनाभने भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंके अनुसार समस्त व्रजक्षेत्रमें अनेक वन, उपवन तथा कदम्बखण्डीमें अनेक प्रकारके वृक्ष लगवाये, जो स्मृतिरूपमें आज भी विद्यमान हैं। सर्वप्रथम ब्रजयात्रा करनेका श्रेय श्रीवज्रनाभजीको है। कालकी विपरीत गतिके चलते लुप्त ब्रजयात्राको सोलहवीं सदीमें श्रीनारायण भट्ट तथा चैतन्य महाप्रभुके शिष्योंने पुनः प्रकट किया।

श्रीकृष्णजन्मस्थानका इतिहास

श्रीकृष्णजन्म-स्थान (मथुरा)-में मन्दिर-निर्माणके बारेमें प्रसिद्ध पुरातत्त्वविद् डॉ० वासुदेवशरण अग्रवालने अपने शोधपूर्ण लेखमें इस प्रकार वर्णन किया है—

१-प्रथम मन्दिर—श्रीकृष्णके प्रपौत्र वज्रनाभद्वारा मथुरा शासनकालमें बनवाया गया था, जो लम्बे अन्तरालके बाद नष्ट हो गया।

२-द्वितीय मन्दिर—जन्मस्थानके पुराने शिलालेखमें ब्राह्मीलिपिमें लिखा है कि ईसा पूर्व ८०-५७के महाक्षत्रप सोडासके राज्यकालमें वसु नामक एक व्यक्तिने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर एक मन्दिर, तोरणद्वार और वेदिकाका निर्माण कराया था, जो बादमें विदेशी आक्रमणकारियोंद्वारा नष्ट कर दिया गया था।

३-तृतीय मन्दिर—४०० ई० के लगभग सम्राट् विक्रमादित्यके शासनकालमें बना। इस भव्य मन्दिरको महमूद गजनवीने सन् १०१७ में तोड़ा और लूटा। —एफ०एस०ग्राउस

४-चतुर्थ मन्दिर—सम्वत् १२०७ (सन् ११५०) जब कि महाराज विजयपालदेव मथुराके शासक थे, जज्ज नामके एक व्यक्तिने श्रीकृष्ण-जन्मस्थानपर एक नया मन्दिर बनवाया, जिसे सिकन्दर लोदीके शासनकाल अर्थात् सोलहवीं शताब्दीके आरम्भमें नष्ट कर दिया गया।—एफ०एस०ग्राउस

५-पंचम मन्दिर—इसके लगभग १२५ वर्ष बाद जहाँगीरके शासनकालमें ओरछाके राजा वीरसिंह जूदेव बुन्देलाने इसी स्थानपर एक भव्य मन्दिर बनवाया। इस मन्दिरको हिन्दू धर्मके प्रति ईर्ष्यालु औरंगजेबने सन् १६६९ में नष्ट कर दिया और मन्दिरके मसालेसे एक मस्जिद ईदगाह बनवा दी।—एफ०एस०ग्राउस

६-षष्ठ मन्दिर—वर्तमान श्रीकेशवदेव मन्दिरके निर्माणके बारेमें श्रीकृष्ण-जन्मस्थानसे जो जानकारी मुझे

प्राप्त हुई, उसके अनुसार—इस मन्दिरका निर्माण भगवद्भक्त तथा 'कल्याण' गीताप्रेसके सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रमुख समाजसेवी पण्डित श्रीमदनमोहन मालवीय तथा प्रमुख उद्योगपति श्रीजगमोहन बिड़लाके सहयोगसे जन्मस्थानपर सम्भव हुआ। भव्य केशवदेव मन्दिरका उद्घाटन भाद्रपद कृष्ण ८ संवत २०१५, तारीख ६ सितम्बर सन् १९५८ को हुआ। यहाँतक तथ्य बहुत महत्त्वपूर्ण है कि श्रीकृष्णजन्मस्थानका गर्भगृह, जो औरंगजेबकी क्रूर दृष्टिसे बच गया था, वह आज भी अपने मूल स्थानपर स्थित है तथा दर्शनार्थी उसके दर्शन करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वज्रनाभकालसे लेकर आजतक (लगभग ५१०० वर्षके अन्तरालमें) श्रीकृष्णजन्मस्थानने इतिहासके अनेक पन्नोंको पलटा है तथा हिन्दू संस्कृतिको अक्षुण्ण बनाये रखा है।

श्रीवज्रनाभका महाप्रयाण—श्रीकृष्ण ही वज्रनाभ हैं तथा वज्रनाभ ही श्रीकृष्ण हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण श्रीमद्भागवतके माहात्म्य खण्ड, अध्याय ३ श्लोक ६५—७२ में स्पष्ट रूपसे मिलता है, जहाँ उद्धवजी कहते हैं—अत: राजेन्द्र परीक्षित्! तुम जाओ और कलियुगको जीतकर अपने वशमें करो। उद्धवजीके इस प्रकारके कहनेपर राजा परीक्षित्ने उन्हें प्रणाम किया और दिग्विजयके लिये निकल गये। इधर वज्रनाभने भी अपने पुत्र प्रतिबाहुको अपनी राजधानी मथुराका राजा बना दिया और माताओंको साथ ले उसी स्थानपर जहाँ उद्धवजी प्रकट हुए थे, जाकर श्रीमद्भागवत सुननेकी इच्छासे रहने लगे। तदनन्तर उद्धवजीने गोवर्धनपर्वतके निकट (वर्तमानमें कुसुम-सरोवरके निकट उद्धवकुण्ड) एक महीनेतक श्रीमद्भागवत-कथाके रसकी धारा बहायी। उस समय रसका आस्वादन करते समय प्रेमी श्रोताओंकी दृष्टिमें सब ओर भगवान्की सच्चिदानन्दमयी लीला प्रकाशित हो गयी और सर्वत्र श्रीकृष्णका साक्षात्कार होने लगा। उस समय सभी श्रोताओंने अपनेको भगवान्के स्वरूपमें स्थित देखा। वज्रनाभने भी अपनेको श्रीकृष्णके दाहिने चरण-कमलमें स्थित देखा और श्रीकृष्णके विरह-शोकसे मुक्त होकर उस स्थानपर अत्यन्त सुशोभित होने लगे। प्राय: ऐसा ही विवरण गर्गसंहिता, अध्याय ६२ में भी मिलता है। उद्धवजी परम भागवत थे तथा यदुवंशमें उत्पन्न हुए थे। वे वसुदेवजीके भाई देवभागके पुत्र थे तथा श्रीकृष्णके चचेरे भाई थे।

वज्रनाभ-कालगणना—वज्रनाभके जन्मकालका निर्णय करनेके लिये पौराणिक विवरणोंके साथ-साथ ऐतिहासिक ज्योतिषीय शोधोंका सहारा लेना आवश्यक है। प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीचिन्तामणि विनायक वैद्य, डॉ० प्रभुदयालमीतल एवं श्रीलज्जाराम मेहता आदि इतिहासकारोंने श्रीकृष्णकाल, महाभारतकाल तथा परीक्षित्कालसे सम्बन्धित कालगणनाकी विवेचना की है। मैं इस सम्बन्धमें अधिक विस्तारमें न जाकर संक्षेपमें ही लिख रहा हूँ कि पौराणिक विवरणोंके अनुसार श्रीकृष्ण द्वापरयुगके अन्त और कलियुगके आरम्भके सन्धिकालमें विद्यमान थे। श्रीकृष्णके महाप्रयाणके बाद सम्राट् युधिष्ठिरके समयमें ही कलियुगका प्रवेश हो चुका था। उसी समय पाण्डवोंने अर्जुनके पौत्र परीक्षित्को हस्तिनापुर तथा द्वारकासे लाये श्रीकृष्ण प्रपौत्र वज्रनाभको इन्द्रप्रस्थका राज्य देकर हिमालयके लिये स्वर्गारोहण किया। उस समय राजा परीक्षित्की उम्र ३६ वर्ष थी तथा वज्रनाभकी उम्र १६ वर्ष थी। ज्योतिषीय गणनाके अनुसार आज वि०सं० २०७८, सन् २०२१ ई०को कलियुगके ५१२२ वर्ष बीत चुके हैं। अत: ५१२२ वर्ष +१६ वर्ष=५१३८ वर्ष पूर्व वज्रनाभका जन्मकाल सिद्ध होता है।

श्रीवज्रनाभ-महत्ता—अन्य साहित्यिक स्रोत—'भक्ति-रत्नाकर' की पंचम तरंगमें श्रीवज्रनाभजीकी महत्ताको स्पष्ट किया है (बंगला भाषामें)—

मथुरा मण्डले राजा वज्रनाभ हैला।
कृष्णलीला नामे बहु ग्राम बसाइला॥
श्रीविग्रह सेवा कैला कुण्डादि प्रकाश।
नाना रूपे पूर्ण हैल ताँर अभिलाष॥
कत दिन परे सब हैल गुप्त पाय।
तीर्थ प्रसंगादि केह ना करे को धाय॥
श्रीकृष्ण चैतन्यचन्द्र ब्रजेन्द्र कुमार।

मथुरा आइला हैला कौतुक अपार॥
करिया भ्रमण किछु दिग् दर्शाइला।
सनातन रूपा द्वारे सब प्रकाशिला॥

आधुनिक खड़ी बोलीके आविष्कारकर्ता श्रीभारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीने वज्रनाभजीका उत्पत्ति-स्थान, उनकी महत्ता तथा कलियुगमें पृथ्वीपर अपने यदुवंशकी स्थापनाहेतु श्रीकृष्णके चरणोंमें स्थित एवं श्रीकृष्णद्वारा वज्रनाभजीको अपने स्थायी चरण-चिह्नके रूपमें रखना दोनोंकी एकरूपता तथा अभिन्नताको इस पद्यमें स्पष्टतः दर्शाया है—

चरन परस नित जें कँरत इन्द्रतुल्य ते होत।
वज्र-चिन्ह हरि-पद-कमल जो हिय करत उदोत॥
पर्वत से निज-जननके पापहिं काटन काज।
वज्र-चिन्ह पद में धरत कृष्ण चन्द्र महाराज॥
वज्रनाभ यासों प्रगट जादव सेस लखाहिं।
पायन-हित निज वंश भुवि वज्र चिन्ह पद माहिं॥

गर्ग-संहिता-अश्वमेध खण्ड, अ० १ में श्रीवज्रनाभजीकी महिमाका वर्णन विस्तारसे दिया है। यादवकुल (यदुवंश)-के परम गुरु तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ श्रीगर्गाचार्यजीने आठ दिनोंतक अश्वमेध-यज्ञकी कथा कही, फिर वे नरेश्वर वज्रसे मिलनेके लिये श्रीहरिकी मथुरापुरीमें आये। सोलह वर्षकी अवस्था और सुपुष्ट शरीरवाले विशालबाहु श्यामसुन्दर कमलनयन वज्रनाभने गुरुके चरणोदकको लेकर सिरपर रखा। वज्रनाभ सौ सिंहोंके समान उद्भट शक्तिशाली थे। तब गर्गमुनि बोले—'हे यदुकुलतिलक! युवराज! महाराज! यदुवंश-शिरोमणि! नृपेश्वर वज्रनाभ! तुमने सब सत्कर्म ही किया है, पृथ्वीपर रहनेवाले लोगोंका पालन किया है। वत्स! तुमने भूतलपर धर्मको स्थापित किया है। विष्णुरात (परीक्षित्) तुम्हारे मित्र होंगे तथा अन्य नरेश भी तुम्हारे वशमें रहेंगे। नृपश्रेष्ठ! तुम धन्य हो, तुम्हारी मथुरापुरी धन्य है, तुम्हारी सारी प्रजाएँ धन्य हैं तथा तुम्हारी ब्रजभूमि धन्य है। तुम श्रीकृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध (चतुर्व्यूहावतार)-का भजन करते हुए उत्तम भोग भोगो। नरेश्वर! निःशंक होकर राज्य करो।'

'श्रीनिम्बार्काचार्य' शोधग्रन्थमें करौलीके प्राचीन संस्कृत विद्वानोंके श्लोकोंमें भी श्रीवज्रनाभजीको महिमा-मण्डित किया है

कृष्ण-प्रपौत्रो नृपवज्रनाभः संदीक्षितो निम्बदिवाकराय।
अद्यापि तत्पद्गतिवर्तमानाः तद्वंशजा भूपवराः प्रजाश्च॥

इसी ग्रन्थमें आगे लिखा है—'करौलीका राजपरिवार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी वंश-पराम्परामें है। श्रीवज्रनाभजी श्रीकृष्णके प्रपौत्र थे। श्रीवज्रनाभजीकी प्रार्थनानुसार भगवान्ने दर्शन देकर प्रस्तर (पत्थर)-चौकी प्रदान की तथा आदेश दिया कि यह मेरे स्नान करनेकी चौकी है, इसमें मेरी आकृतिकी आठ प्रतिमाएँ बनवाकर ब्रज-वृन्दावनमें स्थापित करो, उन प्रतिमाओंमें मेरे साक्षात्-विग्रहके दर्शन होंगे। भगवद्-आज्ञानुसार श्रीवज्रनाभने आठ मूर्तियाँ बनवाकर ब्रजमें स्थापित कीं, जो विख्यात हैं—

चार देव दुइ नाथ हैं, दुइ हैं श्री गोपाल।
वज्रनाभ प्रकट करी अष्टमूर्ति भगवान्॥

अर्थात् चार देव—गोविन्ददेव (वृन्दावन), केशवदेव (मथुरा), हरिदेव (गोवर्धन), बलदेव (दाऊजी)।

दो नाथ—'श्रीनाथ (जतीपुरा), गोपीनाथ (वृन्दावन)'।

दो गोपाल—'मदनगोपाल एवं साक्षीगोपाल (वृन्दावन)'।

अन्तमें, श्रीवज्रनाभ तो श्रीकृष्णकी साक्षात् परम्परा हैं। भले ही वे द्वारकासे ब्रज आकर उन श्रीकृष्णके पाद-पद्मोंमें अपना स्थान प्राप्त कर लें, किंतु ब्रजभूमिकी श्रीकृष्ण-विहार-भूमियोंका प्रथम-दर्शन-परिचय संसारको उनके अनुग्रहसे प्राप्त हुआ। श्रीवज्रनाभने उन लीलामय श्रीकृष्णके धामका सम्पर्क सुलभ कराया। वज्रनाभ महान्-आदर्शके प्रतीक थे। उन्होंने गर्गमुनिके निर्देशनमें अश्वमेध-यज्ञ भी किया था। उनका शासन धर्मका शासन था। वे महान् वीर, दानशील, परोपकारी, दयालु एवं परम कृष्ण-भक्त थे। इसीलिये वज्रनाभजी अपने महान् चरित्र एवं कार्योंके कारण युग-प्रवर्तक कहे जाते हैं।

संत-चरित—

गुजरातके सन्त श्रीमोटाजी

(श्रीरजनीकान्तजी बर्मावाला)

हमारा भारत देश महापुरुषोंकी जन्मभूमि है। इस पावन धरतीपर अनेक विश्वप्रसिद्ध अवतारी महापुरुष श्रीराम, श्रीकृष्ण, भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध और सन्त श्रीकबीर, श्रीनानक, श्रीतुलसीदास, श्रीसूरदास, श्रीज्ञानेश्वर, श्रीतुकाराम, श्रीनामदेव, शंकराचार्य, श्रीवल्लभाचार्य, श्रीमाधवाचार्य, महाप्रभु चैतन्य, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी रमण महर्षि, श्रीअरविन्द आदि पैदा हुए हैं।

इन्होंने हमारी सनातन संस्कृतिका झंडा पूरे विश्वमें लहराकर विश्वको सत्य, प्रेम, अहिंसा, करुणा, क्षमा, उदारता और सहिष्णुता आदि दिव्य गुणोंकी पावन गंगामें सराबोर करके 'वसुधैव कुटुम्बकम्'के सूत्रमें बाँधकर विश्वको मानव एकताका महान् संदेश दिया और मानवताका रक्षण किया है।

किंतु इन सभी महापुरुषोंसे बिलकुल अनोखे एकदम निराले अवतारी महापुरुष श्रीमोटा हमारे गुजरातमें हो गये हैं। वैसे तो वे अवधूत दिगम्बर परम्पराके महात्मा थे। किंतु आपश्रीने श्रीसद्गुरु श्रीकेशवानन्दजी धूनीवाले दादा (सांइखेडा-खंडवा, मध्यप्रदेश)-की आज्ञासे गृहस्थीका वेश अपनाकर अपनी देहातीत, गुणातीत और द्वन्द्वातीत अवस्थाकी महानताको अत्यन्त सादगी और नम्रताकी चादर ओढ़कर गृहस्थाश्रमी वेशमें छुपाकर रखी थी।

श्रीमोटाजीका जन्म भाद्रपद कृष्णपक्षकी चतुर्थी वि०सं० १९५४ तदनुसार सन् १८९८ई०, सितम्बर मासकी चौथी तारीखको सावली (जि० बडोदरा, गुजरात)-में हुआ था। उनके पिताजीका नाम आशाराम और माताजीका नाम सूरजबा था। श्रीमोटाजीके दादा और पिता भजनानन्दी जीव थे। इसलिये उनका उपनाम भगत था। उनके बड़े भाईका नाम जमनादास था। दो छोटे भाइयोंके नाम अनुक्रमसे मूलजीभाई और सोमाभाई थे।

जब श्रीमोटाजी छोटे बालक थे, तब एक ब्राह्मणने उनका बायाँ हाथ देखा था। उस हाथकी कलाईपर काला लच्छन था और हथेलीकी रेखामें त्रिशूलको देखकर श्रीमोटाजीकी माताजी सूरजबाको बताया था कि 'माई, तेरा ये लाल बहुत बड़ा आदमी बनेगा या बहुत बड़ा सन्त बनेगा।' बादमें एक साधु महात्माने भी आगाही की थी कि 'माई! तेरा ये बेटा बड़ा ही धर्मात्मा बनेगा।'

श्रीमोटाजीके जन्मके कुछ वर्ष बाद उनके पिताजीका रँगरेजीका धन्धा टूट गया। इससे वे सावली छोड़कर कालोल (जि०पंचमहाल, गुजरात)-में आ बसे। पिताजीकी कमाई कम थी और कुटुम्ब बड़ा था। इससे माता सूरजबा गाँवके धनी कुटुम्बोंमें अनाज पीसने-कूटनेकी मजदूरीका काम करती थीं। माता-पिताको कड़ी मेहनत करते देखकर श्रीमोटाजी भी अपनी छोटी उम्रमें ईंटोंके भट्टेपर गरम-गरम ईंटें उठाते थे। राजगीरका काम भी किया। आसपासके खेतोंमें कपास बीनने जाते। मुसलाधार बारिशमें खेतोंमें पैर धँस जाय, ऐसे कीचड़में धान बोआईकी मजदूरी की।

ऐसी दारुण गरीबीमें कड़ी मजदूरी करते-करते प्राथमिक शिक्षण कालोलमें पूरा करके आगे पढ़ने पेटलाद गये। वहाँके श्रीजानकीदासजी और अहमदाबादके

श्रीसरयुदासजी-जैसे समर्थ महात्माओंके आशीर्वादसे अच्छे नम्बरसे मैट्रिककी परीक्षा पास की। बादमें बी०ए० की पढ़ाईके लिये ई०सन् १९१९-२०में बडोदरा कालेजमें दाखिल हुए। उसके बाद गांधीबापू प्रेरित नवजीवन विद्यापीठ, अहमदाबादमें दाखिल हुए। बी०ए०की डिग्री प्राप्त करनेमें दो-तीन मास थे, किंतु गांधीबापूके देशसेवाके आवाहनके प्रत्युत्तरमें डिग्रीका मोह छोड़कर हाथमें गंगाजल लेकर देशसेवाका व्रत लिया, जिससे मन कहीं ललचा न जाय। सन् १९२१ ई० में श्रीमोटाको अच्छे वेतनसे परदेशमें खासकर अफ्रीकामें शिक्षककी नौकरी मिलती थी। उसको अस्वीकार करके उससे कहीं कम वेतनमें आपने गांधीबापूके हरिजन सेवक संघमें बालकोंको पढ़ानेके लिये शिक्षककी नौकरी स्वीकार की। परंतु यह एक बहुत बड़ी चुनौती थी। कम वेतनमें सात-आठ व्यक्तिका कुटुम्ब निभाना आदि कारणोंसे श्रीमोटाको मिरगीका रोग लग गया।

ऐसे तनावग्रस्त रोगके निवारणके लिये नर्मदामैयाके तटके एक महात्माने '**हरिः ॐ**'का मन्त्रजप करनेका उपाय बताया। किंतु वह उपाय नहीं किया। बादमें रोगकी तीव्रतासे ऊबकर गरुडेश्वर (तालुका-नांदोद, जिला-नर्मदा, गुजरात)-की एक ऊँची कगारपरसे नर्मदामैयामें शरीरका अन्त करनेके लिये कूदे। किंतु चमत्कारिक रूपसे बच गये। बादमें उसी महात्मा और उनकी आध्यात्मिक माताके प्रभाव और गांधीजीकी सलाहसे '**हरिःॐ**' का नामस्मरण किया और तीन महीनेमें मिरगीके रोगसे मुक्ति पायी।

प्रभुनाम-स्मरणमें कुछ श्रद्धा जगी, विश्वास हुआ। शरीरके रोगसे मुक्ति पानेका ध्येय प्राप्त हो गया। इससे प्रभुनाम-स्मरणसे प्रभुप्राप्ति-जीवनमुक्तिका ध्येय निश्चित हुआ। इसकी पूर्तिके लिये ई०सन् १९२१के अन्त भागमें यानी कि लगभग दिसम्बर मासमें श्रीबालयोगीका मिलन अहमदाबादमें हुआ। श्रीमोटाको उनकी अलौकिक शक्तिका परिचय मिला। उनके द्वारा कुछ लाभ प्राप्त हो, ऐसी प्रार्थना श्रीमोटाने की थी।

श्रीबालयोगीजी तो अन्तर्यामी थे। उस प्रार्थनाके प्रत्युत्तरमें वे ई०सन् १९२२ में नाडियाद पधारे और वसन्तपंचमी, २ फरवरीके दिन श्रीकेशवानन्दजी धूनीवाले दादा (सांइखेडा-खंडवा, म०प्र०)-की आज्ञानुसार श्रीमोटाको साधनामें दीक्षित किया और श्रीधूनीवाले दादाजीको अपना गुरु स्वीकारकर उनसे मिलकर साधनामार्गमें आगे बढ़नेका आदेश दिया।

इस आदेशानुसार श्रीमोटा सांइखेडा (म०प्र०) जाकर श्रीधूनीवाले दादाजीको मिले। श्रीधूनीवाले दादाजीने श्रीमोटाको हरिजन सेवक संघकी नौकरीमें ही चालू रहकर हरिस्मरण, प्रार्थना, आत्मनिवेदन, समर्पण, अभय, नम्रता, मौन और एकान्त—ये आठ साधन विकसित करके साधना-भक्ति करनेका आदेश दिया।

श्रीमोटा ऐसे ही यौवनकालसे समाजसेवक और उत्तम देशप्रेमी थे। उनके समाजसेवा और देशसेवाके जुनूनको उनके श्रीसद्गुरु श्रीधूनीवाले दादाजीने प्रभुभक्तिमें मोड़ दिया, जैसे श्रीकृष्ण भगवान्ने स्वातन्त्र्य संग्राम सेनानी श्रीअरविन्द घोषको प्रभुभक्तिमें मोड़ दिया था।

श्रीधूनीवाले दादाजीके आदेशानुसार श्रीमोटाने ई० सन् १९२२ से अपनी साधनायात्रा आरम्भ की। उसकी पूर्णाहुति ई०सन् १९३९ में निर्गुण ब्रह्मके साक्षात्कारके परमपदकी प्राप्तिके साथ हुई।

आपने इन सत्रह वर्षोंकी साधनायात्राके बीच श्रीसद्गुरुद्वारा बताये हुए साधनोंका प्रत्यक्ष आचरण करके उनके आदेशोंका अक्षरशः पालन किया और जिनके कोई-न-कोई साक्षी थे, वैसे ही प्रसंग प्रकट किये हैं।

गांधी बापूके राष्ट्रीय असहयोग आन्दोलनके दौरान ई०सन् १९३० में यरवदा तथा ई०सन् १९३२ में वीसापुरमें जेलवास किया और एक तृण भी अपनी जगहसे हटे बिना बेरहमीसे पुलिसकी लाठियोंकी मार खायी।

ई०सन् १९३४ में आपने धुआँधार जलप्रपात (जबलपुर)-की गुफामें इक्कीस दिनतक तपश्चर्या की। उस गुफातक पहुँचना ही जानका जोखिम था। वहाँ प्रपातका जो पानी गिरता, उसकी आवाज इतनी भयंकर और डरावनी थी कि कोई व्यक्ति टिक ही न सके।

ई०सन् १९३८ में कराचीमें आपको आपके सद्गुरुका हुक्म हुआ तो तत्काल समुद्रमें चले गये। कमर तथा

गलेतक पानी आ गया, किंतु आप आगे बढ़ते ही गये। यह सोचा ही नहीं कि मेरा क्या होगा। कुछ घंटोंके बाद समुद्रके किनारेपर पड़े थे। वहींसे चलकर घरको गये।

ई०सन् १९३९ मार्च मासकी १९ तारीख रामनवमीके दिन काशी (बनारस)-में निर्गुण ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ। उसी क्षणसे मुक्तताका अनुभव शुरू हुआ। मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ। स्वयं सर्वत्र, सर्वसमय, सकल ब्रह्माण्डके अणु-अणुमें व्याप्त होते हुए भी स्वयं अलग हूँ। ऐसी द्वन्द्वातीत, गुणातीत, कालातीत और अवस्थातीत अवस्थाके अनुभवमें स्थित हो गये।

इस अवस्थाकी प्राप्तिके बाद हरिजन सेवक संघकी नौकरी त्यागपत्र देकर छोड़ दी और अपने-आप मिलनेवाले स्वजनोंको प्रभुभक्तिमें मोड़ने—मार्गदर्शककी श्रीप्रभुकी नौकरीमें जुड़ गये

इसके लिये श्रीसद्गुरु श्रीधूनीवाले दादाजीने मौनमन्दिर बनानेकी आज्ञा दी। फलस्वरूप सन् १९५०ई० में कुम्भकोणम्में कावेरी नदीके किनारे, सन् १९५५ई० में नाडियादमें शेढी नदीके किनारे और सन् १९५६ई०में सूरतमें तापी नदीके किनारे मौनमन्दिरोंकी स्थापना की, जो हरिः ॐ आश्रमके नामसे प्रसिद्ध हैं।

मौनमन्दिर यानी व्यक्तिगत साधनाके लिये स्नानघर, शौचालय, विद्युत् आदि सुविधाओंसे सुसज्जित आधुनिक गुफा।

श्रीसद्गुरु श्रीधूनीवाले दादाजीने श्रीमोटाको एक और भी हुक्म दिया था कि समाजके पाससे एक करोड़ रुपये उगाहकर मौलिक और अनोखे कार्यके रूपमें समाजको वापस लौटा देना। इसके पालनके लिये श्रीमोटाजीने सन् १९६१-६२ ई० से सन् १९७६ई० की अवधिके दरमियान एक करोड़ रुपये उगाहे और ऐसे विविध मौलिक कार्य समाजोत्कर्षके लिये किये, जो बेहद अनूठे और अनोखे थे।

श्रीसद्गुरु श्रीधूनीवाले दादाजीके वचनका पालन करते-करते शरीरकी मर्यादा आ गयी थी। शरीरके समाजोपयोगी न रहनेसे आपने उसका त्याग करनेका निर्णय किया और २२ जुलाई, १९७६ के दिन अपने एक भक्त श्रीरमणभाई अमीनके फार्म हाउस मही नदीके तटपर (फाजलपुर, जि० वडोदरा, गुजरात)-में अपनी देहलीला समाप्त की। **[प्रेषक—श्रीहरिकृष्ण जे० शुक्ला]**

त्यागका त्याग

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

एक बूढ़े महात्मा जंगलमें रहते थे। उनके पास एक राजा संन्यास लेकर आये। बूढ़े महात्माने सोचा जरा इसकी परीक्षा की जाय। एक बार नये महात्मा क्षेत्रमें रोटी लेकर आ रहे थे, तो इन्होंने जरा कोहनी मार दी। इसपर रोटी गिर गयी, किंतु उन्होंने बड़े प्रेमपूर्वक बिना किसी क्षोभके रोटी उठा ली और चल दिये। फिर पीछे गये, धक्का दिया और रोटी फिर गिर गयी। इस बार नये महात्माने रोटी उठा ली, पर जरा हँसे। पुनः आगे बढ़े फिर उन्होंने वैसा ही किया और रोटी गिरा दी। इस बार वे हँसे और खड़े हो गये। हाथ जोड़कर बोले—'महाराज! आपने बड़ी कृपा की जो मेरी परीक्षा ली। मैं इतने बड़े राज्यका जब त्याग करके यहाँ आ गया हूँ तो इस रोटीवाली बातमें मुझे कौन-सा क्षोभ होगा?'

महात्मा बोले—'इसीलिये रोटी गिरायी है। तुम्हें अभीतक राज्यके त्यागकी बात याद है। इतना बड़ा त्याग करके आ गये यह तुम अपने मनमें याद रखते हो और यही सुनना भी चाहोगे कि कितना बड़ा त्याग है। अगर, राज्यका महत्त्व तुम्हारे मनमें बना हुआ है, तो राज्यका त्याग कहाँ हुआ? इस त्यागका भी त्याग कर दो, तब ठीक है।'

विवेक शक्तिका सदुपयोग ही मनुष्यता है

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

साधकको विचार करना चाहिये कि मैं जो अपनेको मनुष्य मानता हूँ तो पशु-पक्षी आदि अन्य प्राणियोंकी अपेक्षा इसमें क्या विशेषता है। आहार, निद्रा, मैथुन आदि विषय-भोगोंका सुख तथा उनके वियोगका और मरनेका भय, यह सब तो उनमें भी होते हैं, वरं मनुष्यकी अपेक्षा भी उनका विषय-सेवन अधिक नियमित और प्रकृतिके अनुकूल है।

विचार करनेपर मालूम होगा कि उनकी अपेक्षा मनुष्यमें विवेक-शक्ति अधिक है। उसके द्वारा वह यह समझ सकता है कि मैं वास्तवमें कौन हूँ, मुझे क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये इत्यादि।

यदि मनुष्य इस विवेकशक्तिका आदर न करे, उसका सदुपयोग न करके भोगोंके सुखको ही अपना जीवन मान ले तो वह पशु-पक्षियोंसे भी गया-बीता है; क्योंकि पशु-पक्षी आदि तो कर्मफल-भोगके द्वारा पूर्वकृत कर्मोंका क्षय करके उन्नतिकी ओर बढ़ रहे हैं, किंतु विवेकका आदर न करनेवाला मनुष्य तो उलटा अपनेको नये कर्मोंसे जकड़ रहा है। अपने चित्तको और भी अशुद्ध बना रहा है।

अत: साधकको चाहिये कि प्राप्त विवेकका आदर करके उसके द्वारा इस बातको समझे कि यह मनुष्य-शरीर उसे किसलिये मिला है, इसका क्या उपयोग है। विचार करनेपर मालूम होगा कि यह साधन-धाम है। इसमें प्राणी चित्त शुद्ध करके अपने लक्ष्यकी प्राप्ति कर सकता है।

चित्त-शुद्धिके लिये यह आवश्यक है कि साधक ऐसे संकल्प न करे, जिनकी पूर्ति किसी दूसरेपर अवलम्बित हो, जिन्हें वह स्वयं पूरा न कर सकता हो; क्योंकि जो मनुष्य दूसरोंके द्वारा उपार्जित वस्तुओंसे या उनके परिणामसे अपने संकल्पोंकी पूर्ति चाहता है एवं करता और कराता रहता है, उसके संकल्प चाहे कितने ही शुभ क्यों न हों, उसका चित्त शुद्ध नहीं होता। अपने संकल्पोंको दूसरोंके द्वारा पूरा करानेवाला उनका ऋणी हो जाता है एवं उसका चित्त अशुद्ध होता रहता है और पराधीनताकी वृद्धि होती है। पराधीन प्राणी कभी सुखी नहीं हो सकता। अत: दूसरोंपर अपना कोई अधिकार नहीं मानना चाहिये।

अपने द्वारा पूरे किये जानेयोग्य आवश्यक संकल्पोंको पूरा कर देना चाहिये; किंतु उनकी पूर्तिके रसका उपभोग नहीं करना चाहिये। इसके उपभोगसे रागकी वृद्धि होती है और अन्त:करण अशुद्ध होकर उसमें पुन: संकल्पोंकी बाढ़ आ जाती है।

साधकको हरेक प्रवृत्तिद्वारा दूसरोंके अधिकार और संकल्पोंकी रक्षा और पूर्ति करते रहना चाहिये। उसमें भी ऐसा अभिमान कभी नहीं करना चाहिये कि मैंने दूसरोंका कोई उपकार किया है, प्रत्युत यह समझना चाहिये कि इन्हींके लिये प्राप्त हुई शक्ति और पदार्थ मैंने इनको दिये हैं। इसमें मेरा कुछ नहीं है। जैसे कोई डाकिया डाकघरसे प्राप्त रुपयोंको या पारसलको पानेवाले व्यक्तिके पास पहुँचा देता है तो उसमें उसका उस व्यक्तिपर कोई अहसान नहीं है। हाँ, यह बात अवश्य है कि अपना कर्तव्य ठीक-ठीक पालन करनेके नाते उसे सरकारकी प्रसन्नता प्राप्त होती है। इसी प्रकार प्राप्त शक्तिका सदुपयोग करनेसे साधकको भी भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

दूसरोंके अधिकारकी रक्षा करनेके लिये अर्थात् उनके मनमें उत्पन्न संकल्पकी पूर्तिद्वारा उनकी प्रसन्नताके लिये साधकको कोई आवश्यक वस्तु लेनी पड़े या कोई उनके द्वारा किया हुआ काम स्वीकार करना पड़े तो वह चित्तकी अशुद्धिका हेतु नहीं है। उसमें साधकको यह भाव रखना चाहिये कि यह शरीर भी भगवान्‌का ही है। अत: भगवान्‌ने इनके द्वारा अपने-आप जो इस शरीरके लिये आवश्यक वस्तु प्रदान की है, उसे इनसे लेकर, इसके उपयोगमें लगा देना है, यह भी देना ही है; परंतु इसमें भी उपभोगके रसका संग नहीं होना चाहिये; क्योंकि रसका उपभोग करनेसे अपने शरीरमें अहंभाव और जिनके द्वारा संकल्पोंकी पूर्ति की जाती है, उन व्यक्तियोंमें आसक्ति हो जाती है। इससे चित्तमें अशुद्धि बढ़ती है।

प्राप्त शक्तिका उपयोग अपने संकल्पोंकी पूर्तिमें तो पशु-पक्षी भी करते हैं। वही काम यदि मनुष्य भी करता रहे तो उसमें मनुष्य-शरीरकी क्या विशेषता हुई। अत: साधकको समझना चाहिये कि जिस प्रकारकी जो कुछ भी शक्ति—भगवान्‌ने दूसरोंको देनेके लिये अर्थात् उनकी प्रसन्नता और हितमें लगानेके लिये प्रदान की है, उसका उपयोग भगवान्‌के आज्ञानुसार कर देना ही मनुष्यता है।

गो-चिन्तन—

गोमाताकी कृपा

घटना जबलपुर (म० प्र०)-की है, वहाँ मेरी नातिनके ससुर श्रीवास्तवजी रहते हैं। वे विगत चालीस वर्षोंसे गोपालन करते आ रहे हैं। उनकी धर्मपत्नी भी इस कार्यमें अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करती हैं। घरमें तीन-चार गाय-बछड़े प्राय: रहते हैं।

दिनांक २२-६-२००० की शामको गायोंको मच्छरदंशसे बचाने-हेतु उन्होंने एक तसलेमें गोबरके कण्डे एवं घासका कचरा डालकर धुआँ करनेके लिये जलाया। रात्रिके दस-ग्यारह बजेके लगभग घरके सभी सदस्य सो गये। तसलेमें जलाये हुए गोबरके कण्डे और घास-फूस जलकर राख हो गये होंगे, इस खयालसे श्रीवास्तवजीने सोनेके पहले उधर ध्यान नहीं दिया और सो गये। गायोंकी सारमें एक बड़ी गाय और एक दूसरी गाय तथा उनके दो बछड़े लोहेकी जंजीरसे बँधे हुए थे। समीपमें ही कण्डोंका ढेर रखा हुआ था। रातके लगभग डेढ़ बजे तसलेमें रखे हुए कण्डोंकी आग सुलगती हुई पासमें रखे कण्डोंके ढेरतक पहुँच गयी और सूखे कण्डे धू-धू करके जलने लगे। गो-सारमें बहुत धुआँ भर गया और वह धुआँ घरके अन्य कमरोंमें भी फैल गया। लोहेकी जंजीरसे बँधी गौमाताने देखा कि थोड़े ही समयमें पूरे घरमें आग फैल जायगी। अत: उन्होंने अपने स्वामीके जान-मालको बचानेके उद्देश्यसे अपनी पूरी शक्ति लगाकर लोहेकी जंजीर तोड़ डाली और बन्द दरवाजेको सिरके प्रहारसे खोल दिया। जहाँ श्रीवास्तवजी सो रहे थे, उनके पास पहुँचकर उन्हें धक्का देकर जगाया। वे जगे तो देखते हैं कि सामने बड़ी गाय खड़ी है। उसे देखकर वे भौंचक्केसे हो गये। जब उन्होंने सचेत होकर देखा कि सब कमरोंमें धुआँ भर गया है तो उन्हें किसी दुर्घटनाकी आशंका हुई। उन्होंने गायकी सारमें जाकर देखा कि सारमें कण्डे धू-धू करके जल रहे हैं, तो श्रीवास्तवजीने घरके सदस्योंको जगानेके बाद पड़ोसियोंको जगाकर आग बुझानेके लिये कहा। भाग्यवश खुदके घरमें पानीका जेट-पंप लगा था और पड़ोसीके घरमें भी जेट-पंप था। बाल्टियोंमें पानी भर-भरकर कण्डोंके ढेरमें डालना शुरू किया और बिना जले कण्डोंको बाँससे दूर कर दिया। गोमाता खड़ी-खड़ी यह सब देखती रहीं। लगभग एक घण्टेके परिश्रमसे आगपर काबू पा लिया और गायकी सारवाला कमरा ही कुछ जल पाया तथा घरके अन्य कमरे सब सुरक्षित बच गये। वहाँ दमकल (अग्निशामक दल)-की व्यवस्था नहीं थी। इसलिये सबने मिलकर आग बुझायी। इस प्रकार गोमाताकी बुद्धि, स्वामिभक्ति एवं कृपाके कारण उनका पूरा घर जलनेसे बच गया। यदि गोमाता बलपूर्वक अपनी लोहेकी जंजीरको तोड़ न लेतीं और दरवाजेको धक्का देकर न खोलतीं तथा श्रीवास्तवजीको न जगातीं तो पूरा घर जल चुका होता और परिवारवालोंकी जानको भी खतरा बन जाता। इस प्रकार गोमाताकी बुद्धि और कृपाके कारण सबकी जान और मालकी रक्षा हो सकी। गोमातामें इतनी बुद्धि और स्वामिभक्ति है कि उन्होंने अपनी जानकी बाजी लगाकर सबको अकालमृत्युसे बचा लिया। बोलो गोमाताकी जय! **[श्रीसोहनजी सुराना]**

सर्वतीर्थमयी गोमाता

गवां हि तीर्थे वसतीह गङ्गा पुष्टिस्तथा तद्रजसि प्रवृद्धा।
लक्ष्मी: करीषे प्रणतौ च धर्मस्तासां प्रणामं सततं च कुर्यात्॥

गौ-रूपी तीर्थमें गंगा आदि सभी नदियाँ तथा तीर्थ निवास करते हैं और गौओंके रज:कणोंमें सभी प्रकारकी निरन्तर वृद्धि होनेवाली धर्म-राशि एवं पुष्टिका निवास रहता है। गायोंके गोबरमें साक्षात् भगवती लक्ष्मी निरन्तर निवास करती हैं और इन्हें प्रणाम करनेमें चतुष्पाद धर्म सम्पन्न हो जाता है। अत: बुद्धिमान् एवं कल्याणकामी पुरुषको गायोंको निरन्तर प्रणाम करना चाहिये। **[विष्णुधर्मोत्तरपुराण]**

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, शिशिरऋतु, माघ-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिशेष ५।५६ बजेतक	मंगल	पुष्य रात्रिशेष ६।१० बजेतक	१८ जनवरी	**प्रयाग माघमेला प्रारम्भ, मूल** रात्रिशेष ६।१० बजे से।
द्वितीया अहोरात्र	बुध	आश्लेषा अहोरात्र	१९ ,,	× × × ×
द्वितीया प्रात: ६।५५ बजेतक	गुरु	आश्लेषा प्रात: ७।४० बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ७।१० बजेसे, **सिंहराशि** प्रात: ७।४० बजेसे, **सायन कुम्भका सूर्य** दिनमें २।४२ बजे।
तृतीया प्रात: ७।२५ बजेतक	शुक्र	मघा दिनमें ८।४२ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** प्रात: ७।२५ बजेतक, **संकटी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।३९ बजे, **मूल** प्रात: ८।४२ बजेतक।
चतुर्थी ,, ७।२३ बजेतक	शनि	पू०फा० ,, ९।११ बजेतक	२२ ,,	**कन्याराशि** दिनमें ३।१२ बजेसे।
पंचमी ,, ६।५१ बजेतक	रवि	उ०फा० ,, ९।१४ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिशेष ५।५१ बजेसे।
सप्तमी रात्रिमें४।२६ बजेतक	सोम	हस्त ,, ८।४७ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** सायं ५।८ बजेतक, **तुलाराशि** रात्रिमें ८।२३ बजेसे, **श्रवणका सूर्य** दिनमें ३।४५ बजे।
अष्टमी ,, २।४२ बजेतक	मंगल	चित्रा ,, ८।० बजेतक	२५ ,,	× × × ×
नवमी ,, १२।४० बजेतक	बुध	स्वाती प्रात: ६।५२ बजेतक	२६ ,,	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें १२।६ बजेसे, **गणतंत्रदिवस।**
दशमी ,, १०।२८ बजेतक	गुरु	अनुराधा रात्रिमें ३।५५ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ११।३४ बजेसे रात्रिमें१०।२८बजे तक, **मूल** रात्रिमें ३।५५ बजे से।
एकादशी ,, ८।७ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, २।१५ बजेतक	२८ ,,	**धनुराशि** रात्रिमें २।१५ बजेसे, **षट्तिला एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी सायं ५।४६ बजेतक	शनि	मूल ,, १२।३५ बजेतक	२९ ,,	**मूल** ,, १२।३५ बजेतक, शनिप्रदोषव्रत।
त्रयोदशी दिनमें ३।२५ बजेतक	रवि	पू०षा० ,, १०।५८ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें ३।२५ बजेसे रात्रिमें २।२१ बजेतक, **मकरराशि** रात्रिमें ४।३६ बजे से।
चतुर्दशी ,, १।१४ बजेतक	सोम	उ०षा० ,, ९।३१ बजेतक	३१ ,,	**श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या दिनमें ११।१४ बजेतक	मंगल	श्रवण ,, ८।१८ बजेतक	१ फरवरी	**भौमवती मौनीअमावस्या।**

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, शिशिरऋतु, माघ-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।३१ बजेतक	बुध	धनिष्ठा रात्रिमें ७।२५ बजेतक	२ फरवरी	**कुम्भराशि** प्रात: ७।५१ बजेसे, **पंचकारम्भ** प्रात: ७।५१ बजे।
द्वितीया ,, ८।१० बजेतक	गुरु	शतभिषा ,, ६।५१ बजेतक	३ ,,	× × × ×
तृतीया प्रात: ७।११ बजेतक	शुक्र	पू०भा० ,, ६।४४ बजेतक	४ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ६।५७ बजेसे, **मीनराशि** दिनमें १२।४५ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
चतुर्थी प्रात:६।४२बजेतक	शनि	उ०भा० ,, ७।५ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** प्रात: ६।४२ बजेतक, **वसन्तपंचमी, मूल** रात्रिमें ७।५ बजेसे।
पंचमी ,, ६।४३ बजेतक	रवि	रेवती रात्रिमें ७।५७ बजेतक	६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ७।५७ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ७।५७ बजे, **धनिष्ठाका सूर्य** सायं ५।५६ बजे।
षष्ठी ,, ७।१६ बजेतक	सोम	अश्वनी ,, ९।१९ बजेतक	७ ,,	**मूल** रात्रिमें ९।१९ बजेतक।
सप्तमी दिनमें ८।१९ बजेतक	मंगल	भरणी ,, ११।९ बजेतक	८ ,,	**भद्रा** दिनमें ८।१९ बजेसे रात्रिमें ९।४ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिशेष ५।४२ बजेसे, **अचलासप्तमी, रथसप्तमी।**
अष्टमी ,, ९।४९ बजेतक	बुध	कृत्तिका ,, १।२२ बजेतक	९ ,,	**बुधाष्टमी।**
नवमी ,, ११।४० बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ३।५० बजेतक	१० ,,	× × × ×
दशमी ,, १।४६ बजेतक	शुक्र	मृगशिरा अहोरात्र	११ ,,	**भद्रा रात्रिमें** २।५१ बजेसे, **मीनराशि** रात्रिमें ६।३३ बजेसे।
एकादशी सायं ३।५५ बजेतक	शनि	मृगशिरा प्रात: ६।२७ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** सायं ३।५५ बजेतक, **जया एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ,, ५।५८ बजेतक	रवि	आर्द्रा दिनमें ९।१ बजेतक	१३ ,,	**कर्कराशि** रात्रिशेष ४।४८ बजेसे, **कुम्भसंक्रान्ति** प्रात: ७।३३ बजे।
त्रयोदशी रात्रिमें ७।४६ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, ११।२४ बजेतक	१४ ,,	**सोमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, ९।११ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, १।२७ बजेतक	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९।११ बजेसे, **मूल** दिनमें १।२७ बजेसे।
पूर्णिमा ,, १०।८ बजेतक	बुध	आश्लेषा ,, ३।३ बजेतक	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें ९।३८ बजेतक, **सिंहराशि** दिनमें ३।३ बजेसे, **माघी पूर्णिमा, माघ-स्नान** समाप्त।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, शिशिरऋतु, फाल्गुन-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।३४ बजेतक	गुरु	मघा सायं ४। १२ बजेतक	१७ फरवरी	**मूल** सायं ४। १२ तक।
द्वितीया ,,१०। २७ बजे तक	शुक्र	पू०फा० ,, ४।४९ बजेतक	१८ ,,	**कन्याराशि** रात्रिमें १०।५१ बजेसे, **सायन मीनका सूर्य** रात्रिमें २। २३ बजे।
तृतीया ,, ९।५० बजेतक	शनि	उ०फा० ,, ४।५७ बजेतक	१९ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। ८ बजेसे रात्रिमें ९। ५० बजेतक, **शतभिषाका सूर्य** रात्रिमें ९। २० बजे।
चतुर्थी ,, ८। ४७ बजेतक	रवि	हस्त ,, ४। ३७ बजेतक	२० ,,	**तुलाराशि** रात्रिमें ४। १५ बजेसे, **संकटी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ९। २४ बजे।
पंचमी ,, ७। २० बजेतक	सोम	चित्रा दिनमें ३।५४ बजेतक	२१ ,,	× × × ×
षष्ठी सायं ५।३२ बजेतक	मंगल	स्वाती ,, २।५० बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** सायं ५। ३२ बजेसे रात्रिमें ४। ३० बजेतक।
सप्तमी दिनमें३ ।२८ बजेतक	बुध	विशाखा ,, १।२९ बजेतक	२३ ,,	**वृश्चिकराशि** प्रातः ७। ४९ बजेसे।
अष्टमी ,, १।१४ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, ११।५८ बजेतक	२४ ,,	**श्रीजानकी-जयन्ती, मूल** दिनमें ११।५८ बजेसे।
नवमी ,, १०।५२ बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,,१०। २० बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। ४१ बजेसे, **धनुराशि** दिनमें १०। २० बजेसे।
दशमी ,, ८। २९ बजेतक	शनि	मूल ,, ८। ३८ बजेतक	२६ ,,	**भद्रा** दिनमें ८। २९ बजेतक, **विजया एकादशीव्रत (स्मार्त), मूल** दिन ८। ३८ बजेतक।
द्वादशीरात्रिमें३ ।५७ बजेतक	रवि	पू०षा०प्रातः ७। ० बजेतक	२७ ,,	**मकरराशि** दिनमें १२। ३८ बजेसे, **एकादशी व्रत (वैष्णव)।**
त्रयोदशी ,, १।५८ बजेतक	सोम	श्रवण रात्रिमें ४।१६ बजेतक	२८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।५८ बजेसे, **सोमप्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२।१६ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ,, ३।१८ बजेतक	१ मार्च	**भद्रा** दिनमें १।७ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें ३।४६ बजेसे, **पंचकारम्भ** दिनमें ३।४६ बजे, **महाशिवरात्रिव्रत।**
अमावस्या ,, १०।५४ बजेतक	बुध	शतभिषा ,, २।३९ बजेतक	२ ,,	**अमावस्या।**

सं० २०७८, शक १९४३, सन् २०२२, सूर्य उत्तरायण, शिशिर वसन्तऋतु, फाल्गुन-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९।५७ बजेतक	गुरु	पू०भा० रात्रिमें २। २७ बजेतक	३ मार्च	**मीनराशि** रात्रिमें ८। ३० बजेसे।
द्वितीया ,, ९।२९ बजेतक	शुक्र	उ०भा० ,, २।४२ बजेतक	४ ,,	**पू०भा०का सूर्य** रात्रिमें ३। ९ बजे, **मूल** रात्रिमें २। ४२ बजेसे।
तृतीया ,, ९।३० बजेतक	शनि	रेवती ,, ३। २८ बजे तक	५ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ३। २८ बजेसे, **पंचक** समाप्त रात्रिमें ३। २८ बजे।
चतुर्थी ,, १०। ३ बजेतक	रवि	अश्वनी ,, ४। ४४ बजेतक	६ ,,	भद्रा दिनमें ९। ४६ बजेसे रात्रिमें १०। ३ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेश चतुर्थीव्रत, मूल** रात्रिमें ४। ४४ बजेतक।
पंचमी ,, ११। ६ बजेतक	सोम	भरणी अहोरात्र	७ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, १२।३६ बजेतक	मंगल	भरणी प्रातः ६। २६ बजेतक	८ ,,	**वृषराशि** दिनमें १२। ५९ बजेसे।
सप्तमी ,, २। २६ बजेतक	बुध	कृत्तिका दिनमें ८। ३५ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २। २६ बजेसे।
अष्टमी ,, ४। ३० बजेतक	गुरु	रोहिणी ,, ११।० बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ३। २८ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें १२ ।१९ बजेसे, **होलाष्टकारंभ।**
नवमी अहोरात्र	शुक्र	मृगशिरा ,, १। ३८ बजेतक	११ ,,	× × × ×
नवमी प्रातः६ ।३८ बजेतक	शनि	आर्द्रा सायं ४। १३ बजेतक	१२ ,,	× × × ×
दशमी दिनमें ८। ३८ बजेतक	रवि	पुनर्वसु रात्रिमें ६। ३९ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ९। ३१ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें १२। २ बजेसे।
एकादशी ,,१०। २३ बजेतक	सोम	पुष्य ,, ८। ४७ बजेतक	१४ ,,	**भद्रा** दिनमें १०। २३ बजेतक **आमलकी एकादशीव्रत** (सबका), **मीनसंक्रान्ति** रात्रिमें २। ४७ बजे, **वसन्तऋतु प्रारम्भ, खारमास प्रारम्भ, मूल** रात्रिमें ८। ४७ बजेसे।
द्वादशी ,, ११।४४ बजेतक	मंगल	आश्लेषा रात्रिमें १० ।२९बजे तक	१५ ,,	**सिंहराशि** दिनमें १०। २९ बजेसे, **भौमप्रदोषव्रत, श्रीनृसिंहद्वादशी।**
त्रयोदशी ,,१२ ।३८ बजेतक	बुध	मघा ,, ११। ४४ बजेतक	१६ ,,	**मूल** रात्रिमें ११। ४४ बजेतक
चतुर्दशी ,, १।१ बजे तक	गुरु	पू०फा० ,, १२। २९ बजेतक	१७ ,,	**भद्रा** दिनमें १। १ बजेसे रात्रिमें १२। ५६ बजेतक, **होलिकादाह** रात्रिमें १२। ५६ (भद्रा)के बाद, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, १२।५१ बजेतक	शुक्र	उ०फा० ,, १२।४३ बजेतक	१८ ,,	**पूर्णिमा, कन्याराशि** प्रातः ६। ३१ बजेसे, **उ०भा० का सूर्य** दिनमें १०। ५९ बजे, **काशीमें होली।**

भगवद्गीता-स्तुति

मातृरूपिणी भगवद्गीते
मोक्षदायिनी, परम पुनीते!
नमामि तव चरणं!

ज्ञान-अग्निसे कर्म भस्म कर,
भक्ति-सुधासे हृदय-सिन्धु भर,
जरा-मरण, संकट-पीड़ा हर
दे दे मुक्ति परम!
नमामि तव चरणं!

क्रोध, मोह, आसक्ति भस्म कर,
इच्छा, द्वेष, मान-मद-मत्सर,
दु:ख, क्लेश, अवसाद, ताप हर,
कर दे भस्म अहं!
नमामि तव चरणं!

मोह-तिमिर हर, घटच्छेद कर
घटाकाशको महाकाशमें
विलयित कर यह दृष्टि-दान दे,
वासुदेव सर्वं!
नमामि तव चरणं!

चित्तवृत्तिका कर निरोध हे,
ब्रह्मबोध दे, आत्मबोध दे
परहितको जीवन हो अर्पित
मेटो अहं-इदं!
नमामि तव चरणं!
अनुगत तव शरणं!

भक्तिदायिनी, शक्तिदायिनी,
गुरुस्वरूपिणी, मुक्तिदायिनी,
नमामि तव चरणं!
अनुगत तव शरणं!

मोक्ष प्रदान करनेवाली, परम पवित्र, हे माता भगवद्गीता! तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है।

ज्ञानकी अग्निसे कर्मों [और कर्मफलों]-को भस्म कर दो। भक्तिके अमृतसे हृदय-सागरको भर दो। बुढ़ापे और मृत्युके चक्रसे मुक्त कर दो। संकटों और पीड़ाओंको हर लो और परम मुक्ति प्रदान करो। तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है।

क्रोध, अज्ञान-मोह और आसक्तिको भस्म कर दो। इच्छा, द्वेष, मान प्राप्त करनेकी कामना, घमण्ड और ईर्ष्या, दु:ख, क्लेश, अवसाद, ताप आदिको हर लो और हमारे अहंकारको भस्म कर डालो। हे माता! तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है।

मोहके अन्धकारको समाप्तकर, घड़ेको तोड़कर घड़ेके भीतरके आकाशको महाकाशमें मिलाते हुए यह ज्ञान दो कि सबकुछ (घटके भीतर और बाहरका आकाश, यानि आत्मा और अन्य) एक परमेश्वरका ही रूप है। हे माता! तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है।

मनकी प्रवृत्तियोंको [यहाँ-वहाँ भटकनेसे] रोको, [ताकि वे ईश्वरपर केन्द्रित हो सकें] और ब्रह्मज्ञान तथा आत्मबोध प्रदान करो [ताकि हम सभीको ईश्वर रूप समझकर] परोपकारको अपना जीवन अर्पित कर सकें। 'मैं' और 'वह' का भेद मेरे मनमें मिटा दो। हे माता! भगवद्गीता! तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है। तुम्हारी शरणमें आ गया हूँ।

हे भक्ति प्रदान करनेवाली, शक्ति प्रदान करनेवाली, मोक्ष प्रदान करनेवाली गुरुस्वरूपिणी भगवद्गीता! तुम्हारे चरणोंमें नमस्कार है। तुम्हारी शरणमें आ गया हूँ। [रक्षा करो]। **[प्रस्तुति—श्रीब्रह्मबोधिजी]**

कृपानुभूति

(१)

शिवकृपासे प्राणरक्षा

घटना मई २०१४की है। हमारे गाँवके जंगलोंमें घरसे काफी दूर 'काफल' नाम का एक बहुत गुणकारी फल मिलता है। हम बचपनसे ही डिब्बोंमें भरकर ये फल लाते हैं और तीन-चार दिनोंतक इन फलोंको खाते हैं। हर वर्षकी तरह इस वर्ष भी मैं, मेरी दीदी तथा उनकी बेटी तीनों ही जंगलमें वह स्वादिष्ट फल लाने गयीं।

जब हम लोग घरसे निकले तो मौसम बिलकुल साफ था। पर जैसे ही हम जंगलमें पहुँचे, अभी शायद आधा-आधा किलो ही फल निकाल पाये थे कि उतनेमें आसमानमें काली-काली घनघोर घटाएँ छा गयीं। थोड़ी ही देरमें बिजली चमकनेके साथ तेज बारिश शुरू हो गयी। हिमाचलके पहाड़ी इलाकोंमें गर्मीमें भी वर्षासे ठंड लगती है। मुझे तो यूँ लग रहा था कि एक बूँद भी सहन न कर पाऊँगी। पेड़ोंके आश्रयमें हम बैठे थे, वहाँ बिजली गिरनेका और अधिक डर लग रहा था।

अब जब कुछ भी सहारा न सूझा तो मुझे ठाकुरजीकी याद आयी। कुछ देर तो हमने कीर्तन-भजन किया। फिर थोड़ी-थोड़ी वर्षासे सर्दी भी लगने लगी। जब वर्षा तेज हो गयी और बिजली भी जोर-जोरसे चमकने लगी, तो मैंने दीदीसे कहा कि ठाकुरजी हमारी बहुत कम सुनते हैं, बस वे तो हमें तड़पाते ही हैं।

उतनेमें ही दीदीको जाने क्या सूझी, वे वहाँसे उठीं और इधर-उधर आश्रय खोजने लगीं। थोड़ी ही देरमें उन्होंने आवाज दी कि थोड़ा आगे आ जाओ। जैसे ही हम दोनों उनके पास पहुँचीं तो देखते ही हैरान रह गयीं। उस घनघोर जंगलमें एक विशाल पत्थर और उसके नीचे एक गुफानुमा कमरेकी तरह स्थान बना हुआ है। अब बारिश और बिजली अत्यधिक तेज हो गयी। लेकिन हम तीनोंके पास एक बूँद भी न आयी। कुछ देरमें हमारे जो हलके गीले वस्त्र थे, वे भी सूख गये। आसमान भी साफ हो गया। उसके बाद हमने बिहारीजीका धन्यवाद किया और बहुत सारे 'काफल' लेकर सकुशल घर लौटे।

'जाको राखे साइयां मार सके न कोय'

भगवान् हर स्थितिमें हर प्राणीको सँभालते हैं, बस विश्वास होना चाहिये।—**दिनेशकुमारी**

(२)

माँ कालीने सुनी कारुणिक प्रार्थना

घटना पुरानी है। एक बार हमारी बहनके लड़केको एक व्यक्तिने शत्रुताके कारण साइकिलकी चेनसे मार दिया, इससे उसकी आँखपर गहरी चोट लगी। डॉक्टरका कहना था कि इसे कलकत्ता ले जायँ और इस आँखका ऑपरेशन करा लें अन्यथा आँख चली जायगी। हमारी बहन तथा घरके सभी लोग बहुत घबरा गये और उसी दिन कलकत्ता अस्पतालमें पहुँच गये। डॉक्टरने देखा और ऑपरेशनकी तारीख भी निश्चित कर दी। जिस दिन ऑपरेशन होनेवाला था, उस दिन हमारी बहनसे किसीने कहा कि कलकत्ता कॉलेज स्ट्रीटके पास कोई ठनठनिया माँ कालीका मन्दिर है। वहाँ प्रार्थना करनेसे मनकी बात पूरी हो जाती है। बहनने वहाँ जाकर रो-रोकर प्रार्थना की और माँसे बोली कि 'माँ! उसकी आँख अच्छी कर दो और ऑपरेशनसे बचा दो।' अहा! माँकी कृपा ऐसी हुई कि अस्पताल पहुँचकर सुनती हूँ कि लड़केकी दृष्टिमें सफलता मिली है। इस कारण कल ऑपरेशन नहीं होगा। जिस समय उस लड़केको ऑपरेशन-रूममें ले जाया जा रहा था, उसी समय वह बोला कि मुझे दिखायी पड़ रहा है। डॉक्टरने कहा कि 'बोलो तो इस खिड़कीमें कितनी छड़ें लगी हुई हैं?' उस लड़केके ठीक-ठीक बतानेपर डॉक्टर बहुत प्रसन्न हुए और उसे बिस्तरसे उतारकर बोले—'अब ऑपरेशनकी आवश्यकता नहीं, दवासे ठीक हो जायगा।' बस, उन्हीं माँकी कृपासे ऐसा चमत्कार हुआ। तबसे माँपर मेरी श्रद्धा-भक्ति बढ़ गयी।—**श्रीमती गायत्री साहा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

विश्वासघातका फल

१५ अगस्त सन् १९५३ की बात है। मैं अपने कालेजके विद्यार्थियोंके साथ गाँधीपार्कमें स्वतन्त्रताप्राप्ति-समारोहमें सम्मिलित था। आज गाँधीपार्कमें एक नवीन ही चहल-पहल थी; क्योंकि यह राष्ट्रिय पर्व न जाने कितनी अनन्त यम-यातना एवं बलिदानोंके पश्चात् नसीब हुआ है। सबके मुखमण्डलपर तेज था। सबमें स्फूर्ति थी। सबके हृदय-कमल आजके देदीप्यमान अरुणोदयसे विकसित थे। प्राय: सभी संस्थाएँ नानाविध क्रीड़ा-प्रतियोगिताओंमें भाग लेने जा रही थीं और ख्याति प्राप्त करनेके हेतु नाना प्रकारके प्रदर्शनोंका आयोजन कर रही थीं। सभीके नेत्र भविष्यकी ओर थे।

आजका कार्यक्रम आरम्भ होने जा रहा था। चार बजेका समय होगा। वर्षाऋतुकी गरमी बदलीको साथ ही रखती है। अत: सहसा आकाश मेघाच्छन्न-सा हो चला; भगवान् भास्कर भी इन्द्रसेनाके साथ आँखमिचौनी खेलने लगे। दर्शकोंकी जानमें जान आयी। अब तो वह सुखद वेला और भी अधिक सुखद हो उठी। देखते-देखते नभोमण्डल आजके परम पावन पर्वके समुल्लासमें रिमझिम-रिमझिम झरने लगा और धरापर पानी पड़नेके साथ दर्शकोंकी उत्सुक चिरप्रतीक्षित आशाओंपर भी पानी पड़ने लगा। वर्षा जोर पकड़ती गयी और जन-समुदाय तितर-बितर होता गया। मैंने भी जब काम चलता न देखा, तब भागकर रेलवे-स्टेशनके प्रतीक्षालयकी शरण ली।

प्रतीक्षालयमें जनसमुदायकी अपार भीड़ थी। इधर सबको अपनी-अपनी पड़ी थी, उधर मूसलाधार वर्षा पृथ्वी-आकाशको एक करनेपर तुली थी। सहसा मेरे कानमें 'मुझे अन्दर कर दो, मुझे अन्दर पटक दो, हाय! मैं मरा, कोई रामका बन्दा मेरी भी सुन ले।' यह दीन करुण मन्द-सी आवाज आयी। इस आवाजमें दीनता तथा करुणाका समन्वय था और इसीके साथ-साथ सहृदयके मानस-पटलको स्पन्दित करनेवाली मूल वेदना भी थी। मैं चौंका और मैंने पीछेको मुख करके देखा कि सड़कपर पानीके प्रवाहमें मैले-कुचैले गन्दे चिथड़ोंमें लिपटा कोई विवशताकी साक्षात् प्रतिकृति बना पड़ा है। उसकी चेतना-शक्ति लुप्तप्राय थी। मैं किसीकी प्रतीक्षा न करके उसे उठाने लगा और एक-दो अन्य व्यक्तियोंकी सहायतासे उसे अन्दर ले आया गया। वह मूक और निराश था, उसके चेहरेपर भूत-भविष्यके भयानक चित्र हिलोरें ले रहे थे। वर्षा-वेग ज्यों ही शान्त हुआ, त्यों ही जनता भी अपने अभीष्ट कार्यमें व्यस्त हो गयी। मैं उसकी मुद्रासे इतना मर्माहत था कि एक पग भी न चल सका और पूछ बैठा—'तुम कौन हो?' वह बोला—'मैं पापी!' उसके इस उत्तरने मुझे और भी उद्वेलित कर दिया और विवश होकर जब मैंने कुछ अधिक पूछना चाहा, तब वह बोला—'बाबूजी! मैं भूखा हूँ। कुछ खानेको दे दो, तब बताऊँगा।' मैं घर आकर जब उसके लिये खाना ले गया, तब सन्ध्या हो चली थी और बत्तियाँ जल चुकी थीं।

मैं उसके समीप तो बैठा, परंतु नाक-मुखपर कपड़ा रखना पड़ा। उसके वस्त्र भीगे थे। उनपर गन्दे खून और मवादके दाग लगे थे। दुर्गन्ध रग-रगमें व्याप्त थी। समस्त मुखपर सूजन थी। उसका सारा शरीर विकृत था। जहाँ-तहाँ शरीरपर श्वेतकुष्ठके दाग थे, जो वर्षाके कारण हरे हो चले थे। मैंने मानवतावश जब उसका गीला वस्त्र उतारकर दूसरा वस्त्र ओढ़ाया, तब तो मैं और भी स्तम्भित रह गया। वह नितान्त नग्न था। उसके अंग-उपांग विकृत हो चुके थे। पेटमें बड़े-बड़े फोड़े और घुटनोंमें कुष्ठका प्रबल प्रकोप था। उसके लिये सीधे, उलटे या करवट लेकर पड़ना दूभर था। इससे भी आगे उसके शरीरमें न जाने क्या-क्या विकार थे; परंतु उन सबके अवलोकनकी शक्ति मुझमें न रही थी। वह पापी था और पापरूप था।

मेरी जिज्ञासाओंके उत्तरमें वह बोला—'बाबूजी! मैं पापी हूँ, तीर्थवासी काक हूँ; मैं शिक्षित हूँ, पर आजन्मसे कामी-क्रोधी और परद्रोह-व्यवसायी हूँ। मैं बहुत पहले अमुक प्रसिद्ध तीर्थपर रहता था। मेरा मठ था, आश्रम था; मैं वहाँका अधिपति था। तीर्थयात्री मेरे विश्वासपर मेरे पास आते थे और मैं उनके साथ

विश्वासघात करता था। न जाने कितनोंकी हत्या करके उनको जलमें प्रवाहित किया। कुत्सित-से-कुत्सित जघन्य कर्म मैंने किये। भोले-भाले यात्रियोंको धोखा देकर उनका धन, तन तथा सर्वस्व मैंने अपहरण किया। बाबूजी! और कहाँतक कहूँ; कोई ऐसा पाप न था, जो मैंने न किया हो। जब पापघट परिपूर्ण हो गया, तब मेरा सब खेल समाप्त हो गया और आज उन सब पापोंका फल मैं आपके सामने हाहाकार कर ही रहा हूँ। बाबूजी! मैं आज समझ गया कि यह कथन यथार्थ है—

'काटत बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप'

—**रेवानन्द गौड़**

(२)

तीर्थोंमें पापका फल

विश्व-विख्यात उत्तराखण्डके परमपावन तीर्थस्थान ऋषिकेशमें एक दिन एक स्त्रीकी ओर संकेत करते हुए मेरे एक श्रद्धालु मित्रने मुझे बतलानेका अप्रासंगिक साहस किया—'यह है वह स्त्री, जिसने ऋषिकेशमें अनर्गल व्यभिचारका जाल बिछा रखा है।'

यह बेचारी पतिता क्षेत्रमें भिक्षा माँगने आती थी।

'क्या ऋषिकेशमें भी व्यभिचार? और वह भी अनर्गल!!' यह सोचकर मैं काँप गया। किंतु मैंने इस विचारधाराको अपने मस्तिष्कसे टाल ही दिया।

कुछ दिनों—सम्भवतः एक वर्ष पश्चात् मैंने देखा, वही स्त्री किसी भयानक रोगकी शिकार होकर धरतीपर बैठी-बैठी रेंग रही थी। उसके पाँव चल-फिर सकनेमें शत-प्रतिशत असमर्थ हो चले थे। थूक, बलगम, टट्टी, पेशाब—सड़कपर कुछ भी क्यों न पड़ा हो, उसीके ऊपरसे गुजरकर उसे मार्ग पार करना पड़ता था। उसकी दशा वास्तवमें बड़ी ही दयनीय प्रतीत हो रही थी।

'इस परमपावन सुदुर्लभ तीर्थस्थानपर अनर्गल पापाचारका प्रत्यक्ष फल।'—मेरे मनमें भाव उत्पन्न हुआ 'बेचारी अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर रही है।'

मुझे तो फिर ऐसे-ऐसे कई एक और भी कारणोंसे ऋषिकेश रहना अपने लिये भयावह ही प्रतीत होने लगा। घरके पाप ऋषिकेशमें कट सकते हैं, किंतु ऋषिकेशके पाप कहाँ कटेंगे—यह सोचकर मैं आतंकित हो उठता। कभी-कभी मुझे अपने मनोगत भावोंमें विकारकी भीषणता प्रत्यक्ष अनुभव भी होती थी। धिक्! मैं ऋषिकेशनिवाससे किनारा करनेके लिये ही बाध्य हुआ।

तीर्थपर किया हुआ हलका भी पाप तत्क्षण अमंगलरूपमें हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। यदि हम वहाँ कोई उग्र पाप करें, तो सर्वनाश निश्चित ही है। इसका मैं स्वयं भुक्तभोगी हूँ।

एक दिन उत्तराखण्डके परम पावन तीर्थराज ऋषिकेशमें मैं साक्षात् श्रीगंगातटपर कुछ बहनोंपर कुदृष्टिपातके कलंकसे बच न सका। कुछ ही मिनटों पश्चात् मेरा पाप तत्क्षण मेरे सम्मुख आया।

दो गौएँ आपसमें लड़ रही थीं। मैं उनकी टक्करमें आकर धड़ामसे पक्की सड़कपर बहुत ही बुरी तरह गिरा। औरोंने ही दौड़कर मुझे उठाया। मेरे बाँयें हाथकी कलाई टूट चुकी थी।

इस चोटके कारण मैंने बड़ा कष्ट भोगा। यह हाथ बादको ठीक अवश्य हो गया, किंतु पहलेके समान सुन्दर एवं सुघड़ न रह सका। यह असुन्दरता मुझे याद दिलाती रहती है—

'तीर्थस्थलपर कुदृष्टिपात कितना घातक है!'

—**ब्रह्मानन्द 'बन्धु'**

(३)

सौजन्य

सन् १९३६ में एक अमेरिकन महिला टोकियो नगरके कष्टप्रद ग्रीष्मसे त्राण पानेके लिये जापानके उत्तरमें समुद्रतटपर स्थित एक स्वास्थ्यप्रद छोटी-सी बस्तीमें अपनी सप्तवर्षीया कन्याके साथ निवास कर रही थी। इस बस्तीका नाम टाकायामा है। रेलका स्टेशन सेनडाई, वहाँसे बीस मील दूर है और जिस पहाड़ीपर स्थित बँगलेमें यह रहती थी, वहाँसे पक्की सड़क भी आधा मील दूर है। यहाँपर कोई डॉक्टर नहीं था और दवा भी सेनडाईमें ही मिल सकती है।

एक दिन सहसा कन्याके मुखमें छाले हो गये और उसको ज्वर भी हो गया। माँने टोकियो-स्थित विशाल अमेरिकन अस्पताल सेंट लूकको तारद्वारा बच्चीकी दशासे सूचित किया और वहाँसे उत्तर आया कि 'एक विशेष ओषधिके ४० प्रतिशत घोलका मुखके छालोंपर प्रयोग

करो।' माता टैक्सी कारमें जाकर सेनडाईसे दवा बनवा लायी; किंतु उस घोलके एक ही बारके प्रयोगसे बच्चीका मुख जल गया और वह चीत्कार करके रोने लगी। माता समझ गयी कि कोई बड़ी भूल हो गयी है। इतनेमें ही वहाँका तारबाबू आया और कहने लगा कि 'ओषधका घोल भूलसे ४ प्रतिशतके स्थानपर ४० प्रतिशत तारमें लिखा गया था, जिसके लिये वह क्षमा-प्रार्थना करने आया है।'

इधर बच्चीका कष्ट असह्य हो गया। रातकी टोकियोको जानेवाली डाकगाड़ीके लिये समय नहीं रहा था। इसलिये दिनकी पैसेंजर गाड़ीसे ही जाना होगा। जैसे-तैसे रात कटी, किंतु कन्याका सारा मुखमण्डल सूज गया था, उसपर काले-काले धब्बे पड़ गये थे और वह ज्वरसे बेहोश हो रही थी।

बच्चीको टैक्सीतक पहुँचानेके लिये वह समुद्रतटपर मछेरोंके पास सहायताहेतु गयी। यह सुनते ही कि बच्ची बीमार है, मछेरोंने अपनी नावें समुद्रसे निकाल लीं और चार मछेरे माताके साथ उसके निवास-स्थानपर गये। माताका विचार था कि बच्चीको बाँसकी कुरसीपर बिठाकर उठाया जाय; किंतु मछेरोंने कहा कि इसमें बच्चीको कष्ट होगा और उन्होंने बच्चीकी खाटके चारों पायोंको रस्सोंसे बाँधकर रस्सोंको अपने गलेसे लपेट लिया और हाथोंसे रस्सोंको पकड़कर धानके खेतोंकी मुण्डेरोंपरसे चलकर बड़े आरामसे टैक्सीकी सीटपर बच्चीको लिटा दिया और तब ये चारपाई लेकर लौट गये। वापस आनेपर जब महिलाने उनकी सेवाके लिये पारितोषिक देना चाहा तो उन्होंने इन्कार कर दिया कि 'बच्ची बीमार थी, उसको ले जाना ही था।'

पैसेंजर गाड़ीमें केवल तीसरे दर्जेके डिब्बे थे और बड़ी भीड़ थी। महिलाने रेलके गार्डसे कहा कि 'बच्ची बहुत बीमार है, वह छः सीटोंका किराया देगी। यदि छः सीटोंके गद्दे ब्रेकमें बिछा दें, जिसपर बच्चीको लिटाया जा सके और वह बच्चीके सिर तथा मुखपर बर्फ रख सके।' माताकी प्रार्थना सुनकर गार्ड कहीं गया और थोड़ी ही देरमें वापस आकर बच्चीको स्ट्रेचरपर लिटाकर उठा लिया और एक भव्य सैटूनके दरवाजेपर ले गया। वहाँ जापानके उस समयके गृहमन्त्री कौनेसूके उशियाके सचिवने माताका अभिवादन किया और कहा कि 'गृहमन्त्रीको यह जानकर दुःख हुआ है कि आपकी बच्ची बहुत बीमार है और उन्होंने कहा है कि आप उनके शयनागारको स्वीकार करें।' महिलाने कहा कि 'हम इनके शयनागारमें घुसकर इनको कैसे कष्ट दे सकते हैं?' इतनेमें गृहमन्त्री महोदय स्वयं आ गये और कहने लगे कि 'आपकी बीमार बच्चीको बिस्तरकी आवश्यकता है। यह आवश्यकता मुझे पूरी करनेकी अनुमति देनेकी कृपा करें।'

बच्चीको एक सुन्दर बिस्तरपर लिटा दिया गया। उसके ऊपर पंखा चल रहा था। धूल और मक्खियोंसे बचावके लिये बच्चीके मुखपर एक उज्ज्वल जाली उढ़ा दी गयी। ठंडी पट्टी करनेके लिये धुले-धुलाये तौलिये रख दिये गये। अगले स्टेशनपर कई आईसबैग, एक बर्फका तकिया तथा दो सिल्ली बर्फ गाड़ीमें आ गयी। अवश्य ही गृहमन्त्रीने तारद्वारा यह प्रबन्ध किया होगा।

इस गाड़ीके साथ रसोईयान नहीं था। यात्री घरसे भोजन लाते थे अथवा स्टेशनोंसे मोल लेकर काम चलाते थे। महिलाको भोजनकी सुधि नहीं थी, किंतु बच्चीका मुख हरा करनेके लिये यवजल (Barely water) और उसकी माताके लिये गरमागरम भोजन तथा फल आ गये।

दोपहरभर जब गाड़ी तपते मैदानमेंसे जा रही थी, एक कुली द्वारपर बर्फ तोड़ता रहा। जहाँ गाड़ी ठहरती, बर्फकी नयी सिल्ली आ जाती। बाहरके ताप तथा ज्वरके प्रकोपको कम करनेके लिये बच्चीका माथा, गर्दन तथा कंधे बर्फसे ढके रहे। पीछे सेंट लूक अस्पतालके डॉक्टरने कहा कि 'बच्चीके जीवनकी रक्षा बर्फ और शीत पेयके उपचारने ही की; क्योंकि इनसे ज्वरका प्रकोप और मुखकी सड़न रोकी जा सकी।'

जब गाड़ी डइमो (टोकियो नगरका एक स्टेशन) पहुँची तो रोगीको ले जानेवाली गाड़ी स्टेशनपर तैयार थी। जब महिला मन्त्री महोदयका धन्यवाद करनेके लिये उचित शब्द ढूँढ़ रही थी, जो उसे मिल नहीं रहे थे, मन्त्री महोदयने कहा कि 'जो थोड़ी सेवा मैं कर सका, यह मुझे करनी ही थी; क्योंकि आप मेरे देशकी अतिथि हैं।' महिला कृतज्ञतासे गद्गद हो गयी।—**निरंजनदास धीर**

मनन करने योग्य

(१)

भगवान् सब अच्छा ही करते हैं

घटना पुरानी है, मिश्रदेशकी बात है। वहाँके एक भगवद्भक्त गृहस्थकी झोपड़ी वनके समीप थी। वे इतने भगवद्-विश्वासी थे कि सुख-दुःखकी हर घटनामें भगवान्‌की कृपा और उनका मंगलमय विधान ही मानते थे। उनके घरमें उनकी पत्नीके अतिरिक्त तीन प्राणी और थे। एक बैल था, जो बोझा ढोनेके काम आता था। वही उस परिवारकी आजीविकाका साधन था; क्योंकि उसीकी पीठपर लादकर सामग्री बेचने वह व्यक्ति जाता था। एक कुत्ता था, जो उस जंगली प्रदेशमें रात्रिको चौकीदारी करके उस परिवारकी रक्षा करता था। एक तोता था और वह उस सन्तानहीन पति-पत्नीको बहुत प्यारा था। वह तोता रातके अन्तिम प्रहरमें उस गृहस्थको सदा जगा दिया करता था—'उठो, भगवान्‌का भजन करो।'

एक रात्रि वनसे निकलकर एक सिंह आया और उसने गृहस्थके बैलको मार दिया। बेचारा कुत्ता क्या करता! सिंहके भयसे ही भागकर वह घरमें छिप गया था। गृहस्थ सबेरे उठा। मरे हुए बैलको उसने देखा और बोला—'अच्छा हुआ, भगवान् जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं। यह उनका विधान है, इसलिये अच्छा ही है।'

पतिकी बात सुनकर पत्नी झल्लायी, परंतु कुछ बोली नहीं। विपत्ति अकेली नहीं आया करती। उसी दिन किसी प्रकार तोता पिंजड़ेसे निकल गया और घरके कुत्तेने ही उसे मार दिया। पुरुषको समाचार मिला तो बोला—'अच्छा हुआ, भगवान् जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं।'

स्त्रीने इस बार सिर पीट लिया, वह इतनी दुखी थी कि कुछ बोलनेका उसमें साहस ही नहीं था। थोड़ी ही देरमें किसीने बताया कि पता नहीं क्या हुआ, उनका कुत्ता मार्गमें लोट-पोट होने लगा और अब मरा पड़ा है। पुरुष फिर बोला—'अच्छा हुआ, भगवान् जो करते हैं, वह हमारे हितके लिये ही करते हैं।'

इस बार स्त्री उबल पड़ी—'अब आजीविकाहीन रहकर घरमें पड़े रहो और खर्राटे लेकर सबेरेतक सोओ; क्योंकि भोजन देनेवाला बैल तथा जगानेवाला तोता तो चला गया। कुत्ता भी गया, इससे रातमें कोई चीता-भेड़िया हमें-तुम्हें भी पेटमें पहुँचा देगा।'

जो हो गया था, उसे बदलनेका उपाय नहीं था। पुरुष इसे भगवान्‌की कृपा मानकर सन्तुष्ट था और स्त्री दुखी थी; किंतु दोनोंको जीवनक्रम तो चलाना ही था। दिन गया और रात्रि आयी। दोनों सो गये। सबेरे उठे तो देखते हैं कि पूरे गाँवमें लाशें-ही-लाशें बिछी हैं। रात्रिमें डाकुओंने आक्रमण किया था। एक व्यक्ति भी जीवित उन्होंने नहीं छोड़ा। झोपड़ियोंके फूटे बर्तनतक वे उठा ले गये थे। इस झोपड़ीको सुन-सान समझकर वे छोड़ गये थे; क्योंकि जंगलके पासके गाँवमें जिस झोपड़ीमें कुत्ता न हो, उसमें किसीके रहनेकी सम्भावना नहीं की जा सकती।

पुरुष अपनी पत्नीसे बोला—'साध्वी! यदि कुत्ता होता तो हम मारे जाते और बाहर बैल बँधा दीखता तो भी मारे जाते। तोता सबेरे हमें जगा देता तो भी डाकू आहट पाकर आ धमकते। तीनों जानवरोंकी मृत्युका विधान दयामय प्रभुने किया था और हमारे मंगलके लिये किया था। आज हम इसीलिये जीवित बचे हैं कि वे जानवर हमारे यहाँ नहीं थे।'—**सुदर्शन सिंह 'चक्र'**

(२)

'बोये पेड़ बबूलके·····'

पाण्डवोंके वनवासकालकी घटना है—

दुर्वासा ऋषिका यह नियम था कि दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन करानेके बाद स्वयं भोजन करते थे।

दुर्योधनने दुर्वासा ऋषिको उनके दस हजार शिष्योंके साथ चार महीनेतक अपने राज्यमें रखा और सभीको

भोजन कराया। दुर्वासा प्रसन्न हुए और दुर्योधनको वर माँगनेके लिये कहा। दुर्योधनको स्वयंके कल्याणार्थ आशीर्वाद माँगनेकी तो नहीं सूझी। हाँ, दुर्वासाका कोप पाण्डवोंपर उतरे और ऋषि पाण्डवोंको शाप दें—इस हेतुसे उसने ऋषिसे कहा, 'महाराज! मुझे तो चार महीनोंसे आपके आशीर्वाद मिल ही रहे हैं, किंतु मेरे पाण्डव भाई वनमें कष्ट सह रहे हैं। आज द्वादशीका पारना पाण्डवोंके यहाँ करके उन्हें आशीर्वाद प्रदान करें।'

दुर्योधनके मनमें तो यह था कि वनमें पाण्डव दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन नहीं करा सकेंगे। ये ब्राह्मण जबतक वनमें जायँगे, तबतक मध्याह्न हो जायगा। पाण्डवोंने और द्रौपदीने भोजन कर लिया होगा। द्रौपदीके पास अक्षय-पात्र तो है, किंतु खुद भोजन करके उसने अक्षय-पात्र साफ करके रख दिया हो, तो उसमें-से कुछ निकलेगा नहीं। ब्राह्मणोंको वे भोजन नहीं करा सकेंगे, इससे दुर्वासा ऋषि क्रोधित होकर पाण्डवोंको शाप दे देंगे। पाण्डवोंका विनाश हो जायगा। दुर्योधनका यह कपट सरल-हृदय दुर्वासाजी नहीं भाँप सके।

वे तो अपने दस हजार शिष्योंको लेकर पहुँच ही गये पाण्डवोंके पास। युधिष्ठिरने पुष्पोंसे सबका स्वागत किया। दुर्वासाने कहा, 'धर्मराज, इन ब्राह्मणोंका कल एकादशीका व्रत था। आज उसका पारना करना है। खूब भूख लगी है। भोजनकी तैयारी करो। हम सब स्नान करके आते हैं।' यह कहकर वे सभी ब्राह्मणोंको लेकर स्नान करने गये।

द्रौपदीको चिन्ता हुई। भोजन समाप्त हो चुका था, अक्षय-पात्र साफ करके रख दिया गया था। अब उसमेंसे कुछ मिलनेकी आशा नहीं थी। इन दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन किस प्रकार कराया जाय? घरमें तो अन्नका एक दाना भी नहीं था।

अत्यन्त आर्त होकर द्रौपदीने द्वारकानाथका स्मरण किया। वैष्णव जहाँ प्रेमसे कीर्तन करते हैं, वहाँ परमात्मा प्रगट होते हैं। द्वारकानाथ दौड़ते हुए द्रौपदीके पास आये। बोले, 'द्रौपदी, मुझे तो बहुत भूख लगी है। जल्दीसे भोजन रख।'

द्रौपदीने कहा, 'नाथ, आप भी हमारी हँसी उड़ा रहे हैं? घरमें कुछ भी नहीं है। दस हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराना है। इसलिये तो आपको याद किया है, प्रभु!'

श्रीकृष्णने अक्षय-पात्र मँगवाया। उसके अन्दरसे उन्होंने भाजीका एक पत्ता खोज निकाला। वहाँ पत्ता था ही कहाँ? भगवान्‌को तो खेल करना था। भगवान्‌ने बड़े प्रेमसे उस पत्तेको खाया। वे तृप्त हो गये। यह भाजीके पत्तेकी शक्ति नहीं थी, यह तो द्रौपदीके प्रेमकी शक्ति थी, जिससे प्रभुको तृप्ति मिली। प्रभुको जो भोजन कराता है, उसे सम्पूर्ण विश्वका भोजन करानेका फल मिलता है। भाजीका पत्ता खाया था श्रीकृष्णने, किंतु अजीर्णकी डकारें ले रहे हैं दस हजार शिष्योंके साथ दुर्वासा ऋषि। दुर्वासा समझ गये कि यह काम श्रीकृष्णका ही हो सकता है।

भीम ब्राह्मणोंको भोजन करानेके लिये बुलाने गये। दुर्वासाने प्रसन्न होकर कहा, 'भीम, हमें अब भोजनकी आवश्यकता नहीं। तुम्हारे संयम, सदाचार, धर्मपालन, सरल व्यवहार, ब्राह्मण-साधुओंके प्रति रखे गये सद्भाव, ईशचिन्तन—इन सभीको देखकर मैं तृप्त हो गया हूँ। मेरा तुम्हें आशीर्वाद है कि तुम्हारी विजय होगी एवं कौरवोंका विनाश होगा।'

दस हजार ब्राह्मणोंको चार महीनोंतक भोजन करानेके बदलेमें दुर्योधनको विनाश हाथ लगा। जो दूसरोंका बुरा चाहते हैं, उनका यही हाल होता है। सभीके कल्याणकी इच्छा करो, तुम्हारा भी कल्याण होगा; क्योंकि—

'बोये पेड़ बबूलके आम कहाँ ते होय।'

—संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज

सुभाषित-त्रिवेणी

गीतामें कर्ताके तीन प्रकार

[Three Types of Doer in Gita]

❀ ***सात्त्विक कर्ता*** *(Sāttvika Doer)*—

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते॥

जो कर्ता संगरहित, अहंकारके वचन न बोलनेवाला, धैर्य और उत्साहसे युक्त तथा कार्यके सिद्ध होने और न होनेमें हर्ष-शोकादि विकारोंसे रहित है—वह सात्त्विक कहा जाता है।

Free from attachment, unegoistic, endowed with firmness and zeal and unswayed by success and failure—such a doer is said to be Sāttvika.

❀ ***राजस कर्ता*** *(Rājasika Doer)*—

रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः॥

जो कर्ता आसक्तिसे युक्त, कर्मोंके फलको चाहनेवाला और लोभी है तथा दूसरोंको कष्ट देनेके स्वभाववाला, अशुद्धाचारी और हर्ष-शोकसे लिप्त है—वह राजस कहा गया है।

The doer who is full of attachment, seeks the fruit of actions and is greedy, and who is oppressive by nature and of impure conduct, and is affected by joy and sorrow, has been called Rājasika.

❀ ***तामस कर्ता*** *(Tāmasika Doer)*—

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते॥

जो कर्ता अयुक्त, शिक्षासे रहित, घमंडी, धूर्त और दूसरोंकी जीविकाका नाश करनेवाला तथा शोक करनेवाला, आलसी और दीर्घसूत्री है—वह तामस कहा जाता है।

Lacking piety and self-control, uncultured, arrogant, deceitful, inclined to rob others of their livelihood, slothful, despondent and procrastinating—such a doer is called Tāmasika.

[श्रीमद्भगवद्गीता १८।२६—२८]

गीतामें बुद्धिके तीन प्रकार

[Three types of Intellect in Gita]

❀ ***सात्त्विक बुद्धि*** *(Sāttvika Intellect)*—

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥

हे पार्थ! जो बुद्धि प्रवृत्तिमार्ग और निवृत्तिमार्गको, कर्तव्य और अकर्तव्यको, भय और अभयको तथा बन्धन और मोक्षको यथार्थ जानती है—वह बुद्धि सात्त्विकी है।

The intellect which correctly determines the paths of activity and renunciation, what ought to be done and what should not be done, what is fear and what is fearlessness, and what is bondage and what is liberation that intellect is Sāttvika.

❀ ***राजसी बुद्धि*** *(Rājasika Intellect)*—

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥

हे पार्थ! मनुष्य जिस बुद्धिके द्वारा धर्म और अधर्मको तथा कर्तव्य और अकर्तव्यको भी यथार्थ नहीं जानता, वह बुद्धि राजसी है।

The intellect by which man does not truly perceive what is Dharma and what is Adharma, what ought to be done and what should not be done—that intellect is Rājasika.

❀ ***तामसी बुद्धि*** *(Tāmasika Intellect)*—

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥

हे अर्जुन! जो तमोगुणसे घिरी हुई बुद्धि अधर्मको भी 'यह धर्म है' ऐसा मान लेती है तथा इसी प्रकार अन्य सम्पूर्ण पदार्थोंको भी विपरीत मान लेती है, वह बुद्धि तामसी है।

The intellect which imagines even Adharma to be Dharma, and sees all other things upside-down—wrapped in ignorance, that intellect is Tāmasika, Arjuna.

[श्रीमद्भगवद्गीता १८।३०—३२]

साधन-प्रगति-दर्पण (दिसम्बर २०२१)

मनुष्य-जीवन अत्यन्त दुर्लभ है। चौरासी लाख योनियोंके चक्रमें सभी योनियाँ प्रारब्ध-भोगके लिये हैं; मात्र मनुष्ययोनिमें ही हमें कर्म करनेकी स्वतन्त्रता प्राप्त है। यदि हमने इस दुर्लभ अवसरका लाभ उठाकर आत्मकल्याण अर्थात् परमात्मप्राप्तिका प्रयास नहीं किया, तो पता नहीं यह मनुष्य-देह फिर कब मिले। अतएव हमारा यह परम कर्तव्य है कि हम पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्योंका यथाशक्ति पालन करते हुए आत्मकल्याणके लिये भी सतत प्रयत्नशील रहें।—सम्पादक

प्रश्न	प्रथम * सप्ताह	द्वितीय * सप्ताह	तृतीय * सप्ताह	चतुर्थ * सप्ताह
१-क्या मैंने नित्य प्रात:काल उठकर परमात्माका स्मरण और धन्यवाद किया कि मुझे मानव-शरीरमें रहने और कर्तव्यपालनका सुअवसर प्राप्त हुआ है?				
२-क्या मैंने अपने दैनिक पूजा-पाठ, जप और साधनाकी अपनी निर्धारित गतिविधिको तत्परतासे निभाया है?				
३-क्या मैंने अपने व्यवहारमें संयम और अपनी वाणीपर आवश्यक नियन्त्रण रखा है?				
४-क्या इस सप्ताह मैं कुछ स्वाध्याय और सत्संग कर पाया?				
५-क्या नित्य रात्रिमें सोते समय मैंने अपना सारा प्रपंच-भार भगवान्‌को समर्पितकर सुख-पूर्वक नींद ली है?				

सामान्य टिप्पणी (यदि कोई हो तो)— . . . .

. . . .

. . . .

* साधकोंको इस प्रगति-दर्पणका नित्य अवलोकन करना चाहिये और सप्ताहके अन्तमें अपनी प्रगतिका संक्षिप्त-सा विवरण सामनेके कोष्ठकमें लिख लेना चाहिये। कोई विशेष बात हो तो नीचे लिख लेनी चाहिये। भगवत्कृपासे समर्पित साधकोंके कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

॥ श्रीहरि: ॥

(भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और सदाचार-सम्बन्धी सचित्र मासिक पत्र)

'कल्याण'

-के ९५वें वर्ष (वि०सं० २०७७-७८, सन् २०२१ ई०)-के दूसरे अङ्कसे बारहवें अङ्कतकके

निबन्धों, कविताओं और संकलित सामग्रियोंकी वार्षिक विषय-सूची

(विशेषाङ्ककी विषय-सूची उसके आरम्भमें देखनी चाहिये, वह इसमें सम्मिलित नहीं है।)

निबन्ध-सूची

विषय **पृष्ठ-संख्या**

पद्य-संकलन

संकलित

'गीताप्रेस' गोरखपुरकी निजी दूकानें एवं स्टेशन-स्टाल

निम्नलिखित सभी गीताप्रेस गोरखपुरकी निजी दूकानों एवं स्टेशन-स्टालोंपर 'कल्याण' का शुल्क जमा कराके रसीद प्राप्त की जा सकती है।

स्थान	पता	फोन
इन्दौर-452001	जी० 5, श्रीवर्धन, 4 आर. एन. टी. मार्ग	**9630111144**
ऋषिकेश-249304	गीताभवन, पो० स्वर्गाश्रम	**6397500736, 9837775919**
कटक-753009	भरतिया टावर्स, बादाम बाड़ी	**8093091800, 9338091800**
कानपुर-208001	24/55, बिरहाना रोड	**8299309991, 9839922098**
कोयम्बटूर-641018	गीताप्रेस मेंशन, 8/1 एम, रेसकोर्स	**9943112202, 9363007365**
कोलकाता-700007	गोबिन्दभवन; 151, महात्मा गाँधी रोड	**9831004222, 9804801447**
गोरखपुर-273005	गीताप्रेस—पो० गीताप्रेस **e-mail:booksales@gitapress.org**	**8188054402, 8188054403**
चेन्नई-600010	इलेक्ट्रो हाउस No. 23 रामनाथन स्ट्रीट किलपौक	**7200050708**
जलगाँव-425001	7, भीमसिंह मार्केट, रेलवे स्टेशनके पास	**9422281291**
दिल्ली-110006	2609, नयी सड़क	**7289802606, 9999732072**
नागपुर-440002	श्रीजी कृपा कॉम्प्लेक्स, 851, न्यू इतवारी रोड	**8830154589**
पटना-800004	अशोकराजपथ, महिला अस्पतालके सामने	**8002826662, 8210494381**
बेंगलुरु-560027	7/3, सेकेण्ड क्रास, लालबाग रोड	**8310731545**
भीलवाड़ा-311001	जी 7, आकार टावर, सी ब्लाक, गान्धीनगर	**9928527747**
मुम्बई-400002	282, सामलदास गाँधी मार्ग (प्रिन्सेस स्ट्रीट)	**8369536765, 9768954885**
राँची-834001	कार्ट सराय रोड, अपर बाजार, बिड़ला गद्दीके प्रथम तलपर	**7004458358**
रायपुर-492009	मित्तल कॉम्प्लेक्स, गंजपारा, तेलघानी नाका चौक (छत्तीसगढ़)	**9329326200, 7879845886**
वाराणसी-221001	59/9, नीचीबाग	**9839900745, 9140256821**
सूरत-395001	2016, वैभव एपार्टमेन्ट, भटार रोड	**9374047258, 9723397258**
हरिद्वार-249401	सब्जीमण्डी, मोतीबाजार	**9760275146, 9675721305**
हैदराबाद-500095	41, 4-4-1, दिलशाद प्लाजा, सुल्तान बाजार	**9291205498, 9573650611**
काठमाडौं-44600 **(नेपाल)**	पसल नं० 6,7, 8 माधवराज सुमार्गी स्मृति भवन, वनकाली, पशुपति क्षेत्र। **e-mail : gitapress.nepal@gmail.com** **WhatsApp & Mob. +977-9861493826, 9823490038**	

दिल्ली [नं० 5-6] ✆ 9868418958; **नयी दिल्ली** [नं० 14-15] ✆ 9015140474; **हजरत निजामुद्दीन** [दिल्ली]; [नं० 4-5] ✆ 9654523349; **कोटा** [राजस्थान] [नं० 1] ✆ 9314141448; **बीकानेर** [नं० 1] ✆ 9571460742; **मेडता रोड** [नं० 1] ✆ 9660512015; **जोधपुर** [राजस्थान] [नं० 2-3] ✆ 7987452805; **गोरखपुर** [नं० 1] ✆ 9415691921; **लखनऊ** [नं० 1] [एन० ई० रेलवे] ✆ 9889452950; **कानपुर** [नं० 1] ✆ 9450661650; **वाराणसी** [नं० 4-5] ✆ 9451943495; **पं० दी० द० उपाध्याय** [नं० 3-4] ✆ 8858585302; **प्रयागराज** [नं० 4-5] ✆ 8765154366; **हरिद्वार** [नं० 1] ✆ 9897329352; **मथुरा** [नं० 2-3] ✆ 7843033033; **झाँसी** [नं० 1] ✆ 9919919032; **पटना** (मुख्य प्रवेशद्वार) ✆ 9973414044; **राँची** [नं० 1] ✆ 8207586311; **धनबाद** [नं० 2-3] ✆ 9304921119; **मुजफ्फरपुर** [नं० 1] ✆ 7654203765; **समस्तीपुर** [नं० 2] ✆ 9525490065; **छपरा** [नं० 1] ✆ 7301213842; **हावड़ा** [नं० 3] ✆ 7735836812; **हावड़ा** [नं० 23] ✆ 8926040914; **कोलकाता** (चितपुर) [नं० 1] ✆ 9674678284; **दमदम** [नं० 2-3] ✆ 9433661184; **भोपाल** [नं० 1] ✆ 9648351638; **सियालदा मेन** [नं० 8] ✆ 8583050231; **आसनसोल** [नं० 5] ✆ 8116446359; **कटक** [नं० 1] ✆ 9861515362; **ग्वालियर** [नं० 1] ✆ 8430611489; **भुवनेश्वर** [नं० 1] ✆ 9937466453; **अहमदाबाद** [नं० 2-3] 7984793660; **राजकोट** [नं० 1]; **वडोदरा** [नं० 4-5] ✆ 9998804811; **इन्दौर** [नं० 4] ✆ 9826068366; **जबलपुर** [नं० 6] ✆ 9993714615; **औरंगाबाद** [महाराष्ट्र] [नं० 1] ✆ 9423028069; **सिकन्दराबाद** [आं० प्र०] [नं० 1] ✆ 9849276712; **विजयवाड़ा** [नं० 6]; **गुवाहाटी** [नं० 1] ✆ 9954724003; **खड़गपुर** [नं० 1-2] ✆ 9434032236; **रायपुर** [छत्तीसगढ़] [नं० 1] ✆ 9407624725; **बिलासपुर** [नं० 1] ✆ 9926187085; **बेंगलुरु** [नं० 1] ✆ 8618411244; **यशवन्तपुर** [नं० 6] ✆ 9886645388; **हुबली** [नं० 1-2] ✆ 9113610518; **श्री सत्यसाईं प्रशान्ति निलयम्** [दक्षिण-मध्य रेलवे] [नं० 1] ✆ 9849051793

उपर्युक्त सभी दूकानों एवं स्टेशन-स्टॉलोंपर गीताप्रेस, गोरखपुरकी प्रकाशित पुस्तकें उपलब्ध रहती हैं।

प्र० ति० 20-11-2021
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

ग्राहकोंसे आवश्यक निवेदन

'कल्याण'का सन् 2021, दिसम्बर (कल्याण वर्ष ९५)-का 12 वाँ अङ्क आपके हाथोंमें है। इस अङ्कके साथ ही इस वर्षका समापन हो जायगा। आगामी वर्ष 2022 का कल्याण-विशेषाङ्क '**कृपानुभूति-अङ्क**' शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। उक्त अङ्कमें भगवान्की कृपानुभूतियोंका संग्रह रोचक, प्रेरणाप्रद एवं ज्ञानपरक दृष्टिसे किया गया है, जो ईश्वर-प्रेम एवं भक्तिको बढ़ानेवाला है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी घटित हो रहा है वह उस ईश्वरेच्छाका ही परिणाम है। ईश्वरकी कृपाके अनेक रूप हैं—जिनमें कोमल एवं कठोर-दोनों रूपोंके दर्शन हमें प्राप्त होते रहते हैं। जिसकी अंतिम परिणति प्रभुकी कृपानुभूति ही है, जिसकी अनुभूति प्रत्येक व्यक्तिको समय-समयपर होती रहती है। '**कृपानुभूति-अङ्क**' का कार्य पूर्णताकी ओर अग्रसर है। अत: कल्याणके सम्मान्य ग्राहकोंको सदस्यता-शुल्क भिजवाकर अपना अङ्क सुरक्षित करा लेना चाहिये।

वार्षिक-शुल्क—₹ 250 **पंचवर्षीय-शुल्क—₹ 1250**

शेष 11 मासिक-अङ्क रजिस्ट्रीसे भेजनेके लिये ₹200 अतिरिक्त

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु **gitapress.org** पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

पाठकोंके लिये आवश्यक सूचना

'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-बिक्री-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अत: केवल कल्याणके लिये फोन नं0 **09235400242/09235400244/8188054404** पर सम्पर्क कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त नं0 **9648916010** पर SMS एवं WhatsApp की सुविधा भी उपलब्ध है।

पुस्तकोंके ऑर्डर, डिस्पैच अथवा मूल्य आदिकी जानकारीके लिये पुस्तक प्रचार-विभागके फोन **(0551) 2331250, 2334721 मो. 8188054402, 8188054403** नम्बरोंपर सम्पर्क कर सकते हैं।

माघ-मेला प्रयाग (सन् 2022)

श्रद्धालुओंको चाहिये कि पौष शुक्ल पूर्णिमा (17 जनवरी, 2022 ई०)-से माघ शुक्ल पूर्णिमा (16 फरवरी, 2022 ई०)-तक पूरे एक मासतक कल्पवासी बनकर प्रयागमें रहें और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक नित्यप्रति पुण्यतोया त्रिवेणीमें स्नान-लाभ करते हुए धर्मानुष्ठान, सत्सङ्ग तथा दान-पुण्य करें—

स्नानकी प्रमुख तिथियाँ

1-पौष कृष्ण 13,	शनिवार	(15 जनवरी, 2022 ई०)	मकर-संक्रान्ति।
2-पौष शुक्ल 15,	सोमवार	(17 जनवरी, 2022 ई०)	माघ-स्नानारम्भ।
3-माघ कृष्ण 30,	मंगलवार	(1 फरवरी, 2022 ई०)	भौमवती मौनी-अमावस्या।
4-माघ शुक्ल 4,	शनिवार	(5 फरवरी, 2022 ई०)	वसन्तपंचमी।
5-माघ शुक्ल 7,	मंगलवार	(8 फरवरी, 2022 ई०)	अचलासप्तमी, रथसप्तमी
6-माघ शुक्ल 15,	बुधवार	(16 फरवरी, 2022 ई०)	माघीपूर्णिमा।

माघ-मेला प्रयाग क्षेत्रमें विशेष पुस्तक-स्टॉल लगानेका विचार है।

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।
कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org/gitapressbookshop.in

If not delivered; please return to Gita Press, Gorakhpur—273005 (U.P.)